[2018] 12 एस.सी.आर. 794

बी. के. शैक्षिक सेवाएँ प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

पराग गुप्ता और संगठन

(सिविल अपील संख्या 23988 सन् 2017)

11 अक्टूबर, 2018

[आर. एफ. नरीमन और नवीन सिन्हा, जे. जे.]

दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 - धारा 238ए (जैसा कि 06.06.2018 के प्रभाव से दिवाला और दिवालियापन संहिता (दूसरा संशोधन) अधिनियम, 2018 द्वारा जोड़ा गया है) - धारा 238A, यदि प्रकृति में भूतलक्षी है-अवधारितः धारा 238ए कानून का स्पष्टीकरण करने वाला और प्रकृति में प्रक्रियात्मक होने के कारण, इसे भूतलक्षी माना जाना चाहिए-धारा 238ए का संशोधन अपने उद्देश्य को तब तक पूरा नहीं करेगा जब तक कि इसे भूतलक्षी नहीं माना जाता है, क्योंकि अन्यथा, समय-बाधित दावों को पुनर्जीवित करने की मांग करने वाले आवेदनों को अनुमति देनी होगी, जो परिसीमा कानून, 1963 द्वारा शासित नहीं होंगे।

दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 -धारा 238A (जैसा कि 06.06.2018 के प्रभाव से दिवाला और दिवालियापन संहिता (दूसरा संशोधन) अधिनियम, 2018 द्वारा जोड़ा गया है) और धारायें 7 और 9-'निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया' की शुरुआत के

लिए आवेदन-क्या परिसीमा अधिनियम, 1963 उन आवेदनों पर लागू होगा जो संहिता की धारा 7 और/या धारा 9 के अन्तर्गत 01.12.2016 और उसके प्रारंभ से दिया गया है - अभिनिर्धारितः चूंकि, परिसीमा अधिनियम, संहिता की धारा 7 और 9 के अन्तर्गत दायर किए गए आवेदनों पर संहिता की शुरुआत से लागू होता है, परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137 आकर्षित होता है-"मुकदमा करने का अधिकार", इसलिए, तब प्राप्त होता है जब कोई चूक होती है-यदि चूक आवेदन दाखिल करने की तारीख से तीन साल पहले हुई है, तो आवेदन को परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 के तहत बाधित कर दिया जाएगा, सिवाय उन मामलों को छोड़ कर. जहां मामले के तथ्यों में,ऐसे आवेदन को दाखिल करने में देरी को माफ करने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 को लागू किया जा सकता है। परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137 और धारा 5.

अपीलों को एन. सी. एल. ए. टी. को वापस करते हुए, अदालत ने

अभिनिर्धारित कियाः 1. 1 वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट है कि दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 की धारा 238 ए का संशोधन तब तक अपने उद्देश्य को पूरा नहीं करेगा जब तक कि इसे भूतलक्षी के रूप में नहीं माना जाता है, अन्यथा, काल बाधित दावों को पुनर्जीवित करने की मांग करने वाले आवेदन को, परिसीमा अधिनियम से नियंत्रित न होने के कारण, अनुमति देनी होगी ।[कंडिका 15] [815-डी]

1.2 मार्च, 2018 की दिवाला विधि समिति की रिपोर्ट से पता चलता है कि विधायिका ने एक ऐसे लेनदार को सक्षम बनाने पर विचार नहीं किया जिसने संहिता के तंत्र के माध्यम से इस तरह के विलंबित दावों की अनुमति देने के लिए सीमा की अवधि निर्धारित करने की सहमति दी है। इस संहिता को वर्ष 2017 में उस ऋण के लिए लागू नहीं किया जा सकता है, जो मान लीजिए कि 1990 में समय-बाधित था, क्योंकि इससे संहिता के बेतुके और चरम परिणाम होंगे जो एक बासी या मृत दावे द्वारा शुरू कर, कॉर्पोरेट देनदार के वर्तमान निदेशक मंडल को स्थायी रूप से तुरंत हटाने के आकस्मिक

परिणाम का मार्ग प्रशस्त करेगा, और जो अंततः परिसमापन और इसलिए, कॉर्पोरेट अन्त का कारण बन सकता है। ऐसी स्थिति में, संहिता की परिभाषा धाराओं में "देय ऋण" शब्द प्रयोग स्पष्ट रूप से केवल उन ऋणों को संदर्भित करेगी जो कानून में "दातब्य और देय" हैं, यानी वे ऋण जो समय-बाधित नहीं हैं।[कंडिका 21] [821-डी-एफ]

3. यह स्पष्ट है कि चूंकि परिसीमा अधिनियम संहिता की शुरुआत से ही संहिता की धारा 7 और 9 के तहत दायर आवेदनों पर लागू होता है, इसलिए परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137 आकर्षित होता है।"मुकदमा करने का अधिकार", इसलिए, एक डिफ़ॉल्ट होने पर अर्जित होता है। यदि आवेदन दाखिल करने की तारीख से तीन साल पहले चूक हुई है, तो आवेदन को परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 के तहत वर्जित किया जाएगा, सिवाय उन मामलों के जहां मामले के तथ्यों में, सीमा अधिनियम की धारा 5 को इस तरह के आवेदन दाखिल करने में देरी को माफ करने के लिए लागू किया जा सकता है। [कंडिका 27] [828-बी-सी]

एम.पी, स्टील कारपोरेशन बनाम सी.सी.ई. **(2015) 7 एस.सी.सी. 58**; एलाएड मोटर्स

(पी.) लिमिटेड बनाम सी.आई.टी. **(1997) 3 एस.सी.सी. 472**: **[1997]2 एस.सी.आर. 780; आंध्र प्रदेश शक्ति समन्वय समिति और अन्य बनामलैंको कोंडापल्ली पावर लिमिटेड** और अन्य **(2016) 3 एस. सी. सी. 468** - **पर निर्भर।**

मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम भाईलाल भाई और अन्य **[1964] 6 एस.सी.आर.**

261; इनोवेंटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आईसीआईसीआई बैंक और अन्य **(2018)**

1 एससीसी 407:[2017] **8 एस. सी. आर. 33; नेशनल सिलाई थ्रेड कंपनी लिमिटेड बनाम जेम्स चैडविक और ब्रदर्स लिमिटेड [1953] एससीआर 1028; केरल राज्य बनाम वी. आर. कल्लियानिकुट्टी (1999) 3 एस. सी. सी. 657: [1999]2 एस. सी. आर. 372; भारत संघ बनाम उत्तम स्टील्स लिमिटेड (2015) 13 एस. सी. सी 209: [2015] 4 एस. सी. आर. 770; एस.बी.आई. बनाम वी. रामकृष्णन (2018) एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 963;झारखंड राज्य बनाम शिवम कोक इंडस्ट्रीज (2011) 8 एस.सी.सी. 656: [2011] 9 एस.सी.आर. 1110; बॉम्बे डाइंग एंड मैनुफैक्चरिंग कं. लिमिटेड बनाम बॉम्बे राज्य [1958] एससीआर 1122; भीमसेन गुप्ता बनाम विश्वनाथ प्रसाद गुप्ता (2004) 4 एस.सी.सी. 95:[2004] 2 एस.सी.आर. 65; भोगीलाल चुनीलाल पांड्या बनाम** बॉम्बे **राज्य** [1959] पूरक(1) एस.सी.आर. 310; फ्रांस बी.**मार्टिन्स बनाम माफल्डा मारिया टेरेसा रोड्रिग्स (1999) 6 एस.सी.सी. 627:[1999] 1 पूरक एस. सी. आर. 685 - संदर्भित।**

सर हरिलाल नेमचंद गोसलिया ए.आई.आर. 1950 बाम्बे 74; लछमीश्वर प्रसाद शुकुल और अन्य बनाम केसवर लाल चौधरी और अन्य **ए.आई.आर. 1941 एफ.सी. 5**-संदर्भित

विधिक नियमन संदर्भ

[1964] 6 एस. सी. आर. 261	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 4**
[2017] 8 एससीआर 33	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 5**
[1953] एससीआर 1028	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 10**
(2015) 7 एससीसी 58	**भरोसा किया**	**पैरा 12**
[1999] 2 एससीआर 372	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 13**
[2015] 4 एससीआर 770	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 14**

[1997] 2 एससीआर 780	**भरोसा किया**	**पैरा 15**
[2011] 9 एससीआर 1110	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 17**
[1958] एससीआर 1122	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 18**
[2004] 2 एससीआर 65	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 20**
(2016) 3 एस. सी. सी. 468	**भरोसा किया**	**पैरा 21**
[1959] पूरक(1) एस. सी. आर. 310	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 23**
[1999] 1 पूरक।एस. सी. आर. 685	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 24**

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार सिविल अपील संख्या 23988 सन् 2017

कंपनी अपील (ए.टी.) दिवाला संख्या 76 सन् 2017 में राष्ट्रीय कंपनी कानून अपीलीय न्यायाधिकरण, नई दिल्ली के दिनांक 07.11.2017 के निर्णय और आदेश से

के साथ

सिविल अपील संख्या 439,436,3137,4979,5819,7286 सन् 2018

मोहन परासरन, वरिष्ठ अधिवक्ता, जॉयदीप भट्टाचार्य, आबिद अली बीरन पी, रॉबिन आर.डेविड, प्रितपाल सिंह, मुनव्वर नसीम, सुश्री रुचि खुराना, फेबिन वी.मैहे, धीरज ए. फिलिप, मेसर्स दुआ एसोसिएट्स, के. भीमराज आचार्य, अभिषेक सरवरिया, सुधांशु पालो, ध्रुव गुप्ता, अप्रूव, डी. अभिनव राव, आर. पार्थसारथी, अश्विन कुमार डी. एस., सुश्री अदिति दानी, डी. एल. चिदानंद, एम. ए.वेंकट सुब्रमण्यन, राकेश के. शर्मा, ए. लियो जॉर्ज रोजारियो, निशांत, संचित गार्गा,प्रहलाद सिंह शर्मा, अपीलार्थी के लिए अधिवक्तागण

आशीष ढोलकिया, रोहन चावला, पी. एस.सुधीर, ऋषि माहेश्वरी, सुश्री ऐनी मैथ्यू, सुश्री श्रुति जोस, तन्मय मेहता, हसन मुर्तजा, उत्तरदाता के लिए अधिवक्तागण ।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया

आर. एफ. नरीमन, जे. 1.वर्तमान अपील दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 ("संहिता") की धारा 238 ए से संबंधित हैं, जिसे दिवाला और दिवालियापन संहिता (दूसरा

संशोधन) अधिनियम, 2018 द्वारा 06.06.2018 से निविष्ट किया गया था। उक्त धारा इस प्रकार हैः

"**238 ए. परिसीमा**- परिसीमा अधिनियम, 1963 (36 सन् 1963) के प्रावधान, जहां तक हो सके, न्यायनिर्णायक प्राधिकरण, राष्ट्रीय कंपनी कानून अपीलीय न्यायाधिकरण, ऋण वसूली न्यायाधिकरण या ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही या अपीलों पर लागू होंगे।"

2. इन अपीलों में अपीलार्थियों द्वारा उठाया गया प्रश्न यह है कि क्या परिसीमा अधिनियम, 1963 उन आवेदनों पर लागू होगा जो संहिता की धारा 7 और/या धारा 9 के तहत 01.12.2016 को और इसके प्रारंभ से 06.06.2018 तक दिए गये हैं। इन सभी मामलों में, अपीलीय प्राधिकरण ने अभिनिर्धारित किया है कि परिसीमा अधिनियम, 1963 ऐसा लागू नहीं होता है। यहां तक कि इस धारणा पर कि परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 137 ऐसे आवेदनों पर लागू है, किसी भी मामले में, कोड के शुरू होने या उसके 01.12.2016 को लागू होने के बाद दायर ऐसे आवेदन, चूँकि इस तारीख से तीन साल नहीं बीते हैं, इन सभी आवेदनों को किसी भी स्थिति में समय के भीतर कहा जा सकता है। इसे अभिनिर्धारित करने के बाद, सिविल अपील संख्या 23988 सन् 2017 में पारित विवादित आदेश दिनांक 07.11.2017 द्वारा, अपीलीय न्यायाधिकरण ने यह अभिनिर्धारित कियाः

"**68**. इस सुनिश्चत सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, जबकि हम अवधारित करते हैं कि परिसीमा अधिनियम, 1963 'कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया' की शुरुआत के लिए लागू नहीं है, हम आगे अवधारित करते हैं इस प्रश्न का निर्धारण करने के लिए परिसीमा और चिरभोगाधिकार के सिद्धान्त पर विचार करना आवश्यक है कि क्या धारा 7 या धारा 9 के तहत आवेदन पर लंबे विलंब के बाद विचार किया जा सकता

है, जो कि गफलत के बराबर है और इस तरह व्यक्ति ने अपना दावा जब्त कर लिया है।

69. यदि कार्रवाई के कारण की तारीख से तीन साल से अधिक की देरी होती है और आवेदक की ओर से कोई गफलत नहीं है, तो आवेदक देरी का स्पष्टीकरण दे सकता है। जहां कार्रवाई का कोई निरंतर कारण है, वहां देरी के आधार पर किसी भी आवेदन को अस्वीकार करने का सवाल ही नहीं उठता है।

70. इसलिए, यदि न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के संज्ञान में आता है कि धारा 7 या धारा 9 के तहत 'निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया' शुरू करने के लिए आवेदन लंबे विलंब के बाद दायर किया गया है, तो न्यायनिर्णायक प्राधिकरण आवेदक को उचित अवधि के भीतर देरी का स्पष्टीकरण देने का अवसर दे सकता है कि क्या आवेदक की ओर से कोई गफलत है।

71 बकाया के पुराने दावे पर, देरी के स्पषटीकरण के बिना, आम तौर पर 'आई एंड बी कोड' की धारा 7 और 9 के अन्तर्गत 'कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया' को शुरू करने के लिए विचार नहीं किया जाना चाहिए।

72. हालांकि, 'आई एंड बी कोड' की धारा 10 के तहत आवेदन को शुरु करने के लिए उपरोक्त सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि 'कॉर्पोरेट आवेदक' धन का दावा नहीं करता है, अपितु लेनदारों के बकाया का भुगतान करने में चूक करने के कारण अपने खिलाफ 'कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया' शुरू करने के लिए प्रार्थना करता है। जहाँ तक यह 'दिवाला समाधान वृत्तिक' के समक्ष दावा दायर करने से संबंधित है, पुराने दावे के मामले मे, लंबी देरी और कार्रवाई के किसी भी निरंतर कारण के अभाव में, समाधान आवेदक के लिए यह तय करने के लिए खुला है कि इस तरह के दावे को स्वीकार किया जाना है या नहीं, और समाधान योजना प्रस्तुत करने पर, लेनदारों की समिति ऐसे प्रश्न पर निर्णय ले सकती है। यदि विलंब और

गफलत के आधार पर दावे पर विवाद करने वाले किसी भी लेनदार के संबंध में कोई प्रतिकूल निर्णय लिया जाता है, तो पीड़ित लेनदार के लिए समाधान योजना के खिलाफ न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के समक्ष आपत्ति दर्ज करने और इसके आवश्यक सुधार के लिए खुला होगा जो ऊपर की गई टिप्पणियों के अनुसार निर्णय ले सकता है।"

3. इस निष्कर्ष के कारण, न्यायाधिकरण के आदेश को रद्द कर दिया गया था, और मामले को परिसीमा के बिंदु के अलावा अन्य सभी बिंदुओं पर सुनवाई के लिए वापस भेज दिया गया था।

4. अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान वकीलों ने मार्च, 2018 की दिवाला विधि समिति की रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए तर्क दिया है कि संहिता में धारा 238ए को शामिल करने वाले संशोधन अधिनियम का उद्देश्य कानून को स्पष्ट करना था और इस प्रकार, धारा 238ए को भूतलक्षी माना जाना चाहिए। इसके अलावा, उनके अनुसार, प्रक्रिया के क्षेत्र से संबंधित परिसीमा कानून को, किसी भी मामले में, भूतलक्षी रूप से लागू किया जाना चाहिए। इस प्रतिपादन के लिए, उन्होंने कई निर्णयों का हवाला दिया जिन्हें बाद में इस निर्णय में संदर्भित किया जाएगा। उन्होंने संहिता की धारा 3 (11), 3 (12) और धारा 5 (6) के तहत परिभाषाओं का भी उल्लेख किया और उन पर भरोसा किया, जो धारा 3 (6) के विपरीत यह दर्शाती हैं कि हालांकि धारा 3 (6) में "दावा" भुगतान के अधिकार को संदर्भित करता है, धारा 3 (11) और 3 (12) में "ऋण" और "चूक" की परिभाषाएं क्रमशः एक दावे के संबंध में दायित्व या बाध्यता को संदर्भित करती हैं जो "देय" है और इस मामले में, एक समय-बाधित ऋण को "देय" नहीं कहा जा सकता है ताकि संहिता को लागू किया जा सके। विद्वान वकील ने यह कहते हुए अपीलीय न्यायाधिकरण के फैसले पर हमला किया कि संहिता की धारा 7 या 9 के तहत 2017 में दायर एक आवेदन, जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि संहिता को एक ऐसे ऋण के लिए शुरू किया जाए जो बहुत

पहले समय से बाधित हो गया है, मान लीजिए कि 2011 में, बेतुकेपन की ओर ले जाएगा क्योंकि विधायिका का इरादा कभी भी पुराने और मृत दावों को पुनर्जीवित करने का नहीं हो सकता था, जिससे कॉर्पोरेट देनदार के प्रबंधन को छीनने का कठोर परिणाम हो सकता था, जिसके परिणामस्वरूप अंततः इसकी कॉर्पोरेट मृत्यु हो सकती है। इसके अलावा, अपीलार्थियों के विद्वान वकील के अनुसार, यदि कोई कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 408,424 और 433 के साथ संहिता की धारा 5 (1) में "न्यायनिर्णायक प्राधिकरण" की परिभाषा को पढ़ता है, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि संहिता के तहत उत्पन्न होने वाली राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण ("**एन.सी.एल.टी**".) के समक्ष कार्यवाही संहिता की शुरुआत से ही कंपनी अधिनियम की धारा 433 के माध्यम से परिसीमा अधिनियम के दायरे में आएगी। उनके अनुसार, यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि संहिता की ग्यारहवीं अनुसूची, जिसने विभिन्न अधिनियमों में संशोधन किए थे, ने कंपनी अधिनियम के सीमा प्रावधान को लागू नहीं किया था ताकि संहिता को नियंत्रित किया जा सके क्योंकि यह अनावश्यक था, जैसा कि कंपनी अधिनियम की धारा 408 के साथ पठित संहिता की धारा 5 (1) के अनुसार धारा 433 लागू होती है। किसी भी मामले में, उन्होंने तर्क दिया कि इस धारणा पर भी, कि परिसीमा अधिनियम उपरोक्त आवेदनों पर लागू नहीं होता है,, **मध्य प्रदेश और अन्य राज्य बनाम भाईलाल भाई और अन्य**, (1964) 6 एस. सी. आर. 261 के सिद्धांत का पालन करना होगा, और लैचेस का सिद्धांत लागू होता है। इस सिद्धांत को लागू करने में,परिसीमा अधिनियम द्वारा निर्धारित अवधि को एक मार्गदर्शक माना जाएगा, और परिसीमा अधिनियम के तहत निर्धारित सीमा से परे ऋणों के संबंध में दायर कोई भी आवेदन किसी भी मामले में इस सिद्धांत से प्रभावित होगा।

5. दूसरी ओर, कुछ प्रत्यर्थियों की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष ढोलकिया ने, **इनोवेंटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आईसीआईसीआई बैंक और अन्य**,(2018) 1 एस. सी. सी. 407 मे हमारे निर्णय के आधार पर तर्क दिया कि संहिता, दिवालियापन

से संबंधित एक पूर्ण संहिता है न कि ऋण वसूली से संबंधित और इसलिए, उसमें बताई गई सीमा की अवधि से पता चलेगा कि परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होगा। किसी भी रुप में, जैसा कि इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में कहा गया है, परिसीमा अधिनियम एन. सी. एल. टी. पर लागू नहीं हो सकता क्योंकि यह एक न्यायाधिकरण है न कि एक अदालत। उन्होंने कई निर्णयों का हवाला देते हुए उन राशियों के बीच के अंतर को इंगित किया जो "देय और वसूली योग्य" के विपरीत "प्राप्य और देय" हैं । उनके अनुसार, चूंकि धारा 3 (11) में उपयोग की गई भाषा "प्राप्य" है और धारा 3 (12) में "प्राप्य और देय" है, इसलिए यह स्पष्ट होगा कि एक समय-बाधित ऋण उक्त अभिव्यक्ति के भीतर शामिल किया जाएगा क्योंकि यह ऐसा ऋण नहीं है जो उक्त प्रावधान के तहत " प्राप्य और वसूली योग्य" है। इस उद्देश्य के लिए, उन्होंने कई निर्णयों और भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 की धारा 25 (3), 60 और 61 पर भरोसा किया। उन्होंने एक चार्ट भी सौंपा, जिसमें उनके अनुसार, निम्नलिखित न्यायाधिकरण, विचाराधीन विशेष अधिनियम के आधार पर, या तो शासित होंगे या परिसीमा अधिनियम द्वारा निम्नलिखित रुप से शासित नहीं होंगेः

न्यायाधिकरण का नाम	निर्वाहित कार्य	क्या परिसीमा अधिनियम के लागू होने का प्रावधान है
दूरसंचार विवाद समाधान और अपीलीय न्यायाधिकरण	भारतीय विमानपत्तन आर्थिक विनियामक प्राधिकरण अधिनियम 2008 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण	नहीं
	सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण	हाँ - धारा 60
	भारतीय दूर संचार विनियामक	नहीं

	प्राधिकरण अधिनियम 1997 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण	
राष्ट्रीय कंपनी कानून अपीलीय न्यायाधिकरण	प्रतिस्पर्धा अधिनियम 2002 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण	नहीं
	दिवाला एवं दिवालियापन संहिता 2016 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण	नहीं**
	कंपनी अधिनियम 2013 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण	हाँ - धारा 433
राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण	कंपनी अधिनियम 2013 के अन्तर्गत न्यायाधिकरण	हाँ - धारा 433
	दिवाला एवं दिवालियापन संहिता 2016 के अन्तर्गत निर्णायक प्राधिकारी	नहीं**
प्रतिभूति अपीलीय न्यायाधिकरण	भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम 1992 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण	हाँ - धारा 15 डब्ल्यू
	निक्षेपागार अधिनियम 1996 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण	हाँ - धारा 23 डी
	प्रतिभूति संविदा (विनियामक) अधिनियम 1956 के अन्तर्गत	हाँ - धारा 22 डी

	अपीलीय न्यायाधिकरण	
	पेंशन निधि विनियामक और विकास प्राधिकरण अधिनियम 2013 के अन्तर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण	नहीं
		**दिवाला एवं दिवालियापन (द्वीताय संशोधन) अधिनियम 1018 के पूर्व

इसके अलावा, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, यदि हम यह मानते हैं कि कंपनी अधिनियम की धारा 433, संहिता के तहत मामलों को तय करने वाले एन. सी. एल. टी. को परिसीमा की अवधि प्रदान करने के लिए लागू होगी तो असंगत परिणाम प्राप्त होंगे । उन्होंने तर्क दिया कि राष्ट्रीय कंपनी कानून अपीलीय न्यायाधिकरण **("एन.सी.एल.ए.टी".**) एक अपीलीय न्यायाधिकरण है जो प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002, कंपनी अधिनियम, 2013 और दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 जैसे तीन कानूनों के लिए समान है। प्रतिस्पर्धा अधिनियम के तहत, परिसीमा की कोई अवधि निर्धारित नहीं की गई है जिसके भीतर प्रतिस्पर्धा आयोग को शिकायत की जा सके। इसलिए, जब अपीलीय न्यायाधिकरण प्रतिस्पर्धा अधिनियम के तहत किसी मामले का फैसला करता है, तो वह परिसीमा की अवधि बीत जाने के बावजूद गुण-दोष के आधार पर मामले का फैसला करेगा, जबकि, यदि अपीलकर्ताओं का तर्क सही है, तो वही अपीलीय न्यायाधिकरण,एक मामले मे, संहिता के तहत परिसीमा की अवधि लागू करते हुए ऐसी अवधि से बाहर आने वाले आवेदनों को प्रतिबंधित करने का फैसला करेगा। यह एक असंगत स्थिति है जो विधायिका द्वारा संभवतः अभिप्रेत नहीं की जा सकती थी। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि संहिता की धारा

238ए भूतलक्षी नहीं हो सकती क्योंकि यह, 06.06.2018 के पूर्व परिसीमा अधिनियम लागू किये बिना, धारा 7 या धारा 9 के तहत दायर आवेदन के निहित अधिकार को छीन लेगी । उन्होंने तर्क दिया कि यदि लाचेस के सिद्धांत को लागू किया जाना है, तो इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों पर सहमति और मौन स्वीकृति जैसे अन्य सिद्धांतों के साथ लागू करना होगा, ऐसा कोई कठोर और दृढ़ नियम नहीं है कि एक बार परिसीमा की अवधि समाप्त हो जाने के बाद, आवेदन को खारिज कर दिया जाना चाहिए। उन्होंने अपनी दलीलों को मजबूत करने के लिए कई फैसलों पर भी भरोसा किया।

6. दोनों पक्षों के विद्वान वकील को सुनने के बाद, संहिता में धारा 238ए को लागू करने के कारण को पहले निर्धारित करना महत्वपूर्ण है। यह मार्च, 2018 की दिवाला विधि समिति की रिपोर्ट में निम्नानुसार पाया जाना चाहिएः

"28. परिसीमा अधिनियम, 1963 का लागू होना

28.1 संहिता पर परिसीमा अधिनियम, 1963 ("परिसीमा अधिनियम") के लागू होने के प्रश्न पर एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. के कई निर्णयों में विचार-विमर्श किया गया है। इस विषय पर मौजूदा न्यायशास्त्र इंगित करता है कि यदि कोई कानून एक पूर्ण संहिता है, तो परिसीमा अधिनियम के एक स्पष्ट या आवश्यक बहिष्करण का सम्मान किया जाना चाहिए।[1] इस संबंध में भ्रम के आलोक में, समिति ने इस मुद्दे पर विचार-विमर्श किया और सर्वसम्मति से सहमति व्यक्त की कि संहिता का उद्देश्य उन ऋणों को नया जीवन देना नहीं हो सकता था जो समय-बाधित हैं। यह सुस्थापित कानून है कि जब कोई ऋण काल बाधित है, तो उपचार का अधिकार काल बाधित होता है।[2] इसके लिए संहिता में 'ऋण' और 'दावा' की परिभाषा के साथ पढ़ने की आवश्यकता है। इसके अलावा,

---

[1] रावुला सुब्बा राव और एक अन्य बनाम आय कर आयुक्त, मद्रास (1956)एस.सी.आर. 577

[2] पंजाब नेशनल बैंक और अन्य बनामसुरेंद्र प्रसाद सिन्हा ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1815

कार्यवाही के समापन प्रक्रिया में ऋण को समय-बाधित नहीं किया जा सकता है[3], और संहिता में कानून के इस सिद्धांत के विस्तार को बाहर करने का कोई युक्तियुक्तता नहीं प्रतीत होता है।

28.2 इसके अलावा, परिसीमा पर कानून के लागू न होने से निम्नलिखित समस्याएं पैदा होती हैंः सबसे पहले, यह सी. आई. आर. पी. के लिए दायर करने के लिए सीमा अधिनियम के तहत समय-बाधित ऋण रखने वाले वित्तीय और परिचालन लेनदारों के अधिकार को फिर से खोलता है, जिसके लिए शुरुआत एक लाख रुपये से अधिक के ऋण पर चूक होती है। परिसीमा कानून का उद्देश्य "लंबे समय तक उपभोग द्वारा हासिल साम्य और न्याय या किसी पक्ष की अपनी निष्क्रियता, लापरवाही या चूक से जो नष्ट हुआ, के विषय मे बिघ्न या वंचित किये जाने को रोकना है।"[4] यद्यपि संहिता एक ऋण वसूली कानून नहीं है, लेकिन 'ऋण के भुगतान में चूक' होने के कारण परिसीमा कानून के बहिष्करण को प्रति-अंतर्ज्ञानी बनाता है।दूसरा, यह आई. आर. पी./आर. पी. के साथ समय-बाधित दावे दायर करने के दावेदारों (सार्वजनिक सूचना जारी करने के अनुसार) के अधिकार को फिर से खोलता है, जो संभावित रूप से समाधान योजना का एक हिस्सा हो सकता है।समय-बाधित ऋणों और दावों का पुनर्गठन करने वाली ऐसी समाधान योजना संहिता की धारा 30 (4) के अनुसार वर्तमान में लागू कानूनों के अनुपालन में नहीं हो सकती है।

28.3 यह देखते हुए कि संहिता का उन लेनदारों और दावेदारों के लिए एक नए अवसर के रूप में पैकेज करने का इरादा नहीं था, जिन्होंने निर्धारित सीमा अवधि के भीतर मौजूदा कानूनों के तहत अपने उपचार का प्रयोग नहीं किया, समिति ने

---

[3] इंटरएक्टिव मीडिया एंड कम्युनिकेशन सॉल्यूशन प्राइवेट लिमिटेड बनाम गो एयरलाइंस, 199 (2013) डीएलटी 267

[4] राजिन्दर सिंह बनाम सान्ता सिंह ए.आई.आर.1973 एस.सी. 2537

संहिता में परिसीमा अधिनियम को लागू करने वाली एक विशिष्ट धारा को सम्मिलित करना उचित समझा। परिसीमा अधिनियम के तहत प्रासंगिक प्रविष्टि मामले-दर-मामले के आधार पर हो सकती है। यह आगे नोट किया गया कि परिसीमा अधिनियम निगमित आवेदकों के आवेदनों पर लागू नहीं हो सकता है, क्योंकि ये आवेदक द्वारा सी. आई. आर. पी. के उद्देश्य से अपने स्वयं के ऋणों के लिए शुरू किए गए हैं और लेनदार के उपचार के रूप में नहीं हैं।"

समिति की रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि उसने एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. के फैसलों पर अपना दिमाग लगाया है। इसने इस पहलू पर भी अपना ध्यान केंद्रित किया है कि कानून एक पूर्ण संहिता है और इस तथ्य पर कि इस तरह की संहिता का उद्देश्य समय-बाधित ऋणों को नया जीवन देना नहीं हो सकता था।

7. हम सबसे पहले संहिता को एक सजातीय विधान, कंपनी अधिनियम, 2013 के साथ पढ़ने पर परिसीमा अधिनियम की प्रयोज्यता के बारे में कानून में स्थिति को लेंगे। संहिता की धारा 3 (6), 3 (11), 3 (12) और 5 (6) इस प्रकार हैः

"**3. परिभाषाएँ**- इस भाग में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो, -

(6) "दावा" का अर्थ है-

(क) संदाय का कोई अधिकार, चाहे ऐसा अधिकार किसी निर्णय मे लेखबद्ध, नियत, विवादित, निर्विवाद, कानूनी, न्यायसंगत, प्रतिभूत या अप्रतिभूत है या नहीं जिसके अंतर्गत उधार या अग्रिम भी है; या

(ख) तत्समय प्रवृत्त किसी कानून के अधीन अनुबंध के उल्लंघन के लिए उपचार का अधिकार, यदि ऐसे उल्लंघन से भुगतान का कोई अधिकार उत्पन्न देता है, चाहे वह निर्णय मे लेखबद्ध, नियत, परिपक्व, अपरिपक्व, विवादित, निर्विवाद, प्रतिभूत या अप्रतिभूत है या नहीं।

xxx xxx xxx

"(11)" "ऋण" "से किसी ऐसे दावे के संबंध में दायित्व या बाध्यता अभिप्रेत है जो किसी व्यक्ति से देय है और जिसमें वित्तीय ऋण और प्रचालन ऋण शामिल हैं;"

(12) "ब्यतिक्रम" से ऋण का असंदाय अभिप्रेत है जब ऋण की सम्पूर्ण राशि या कोई भाग या किश्त देय और संदेय हो जाती है और उसका, यथास्थिति ऋणी या निगमित ऋणी द्वारा भुगतान नहीं किया गया है,

"**5. परिभाषाएँ**- इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, -

XXX XXX XXX

(6) "विवाद" में निम्नलिखित के संबंध मे कोई वाद या मध्यस्थता कार्यवाहियाँ अभिप्रेत है

(क) ऋण की राशि की विद्यमानता;

(ख) वस्तुओं या सेवाओं की गुणवत्ता; या

(ग) किसी अभ्यावेदन या वारंटी का उल्लंघन;

धारा 3 (37) के अनुसार, उपयोग किए गए शब्द और अभिव्यक्तियाँ, जो संहिता में परिभाषित नहीं हैं, लेकिन कंपनी अधिनियम, 2013 में अन्य बातों के साथ परिभाषित किए गए हैं, का अर्थ तत्संबंधी अधिनियम में उसको दिये अनुसार होगा। संहिता की धारा 5(1) न्यायनिर्णायक प्राधिकरण को निम्न अनुसार परिभाषित करती हैः

"**5. परिभाषाएँ** - इस भाग में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अभिप्रेत न हो, -

(1) इस भाग के प्रयोजनों के लिए "न्यायनिर्णायक प्राधिकरण" का अर्थ है कंपनी अधिनियम, 2013 (18 सन् 2013) की धारा 408 के तहत गठित राष्ट्रीय कंपनी विधि न्यायाधिकरण;

इसलिए, इस धारा के लिए आवश्यक है कि हम कंपनी अधिनियम की धारा 408 को देखें। कंपनी अधिनियम की धारा 408 में कहा गया हैः

"408. राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण का गठन- केंद्र सरकार, अधिसूचना द्वारा, ऐसी तारीख से,जो उसमे विनिर्दिष्ट की जाय, एक अधिकरण का गठन करेगी जिसका नाम राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण होगा जो अध्यक्ष और उतने न्यायिक और तकनीकी सदस्यों से मिल कर बनेगा, जितने केंद्र सरकार आवश्यक समझे, जिनकी नियुक्ति इस अधिनियम द्वारा या उस समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों और निर्वहन करने के लिए उसके द्वारा, अधिसूचना द्वारा की जायेगी।"

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि एन. सी. एल. टी. की स्थापना ऐसी शक्तियों और कार्यों के निर्वहन के लिए की गई है जो न केवल कंपनी अधिनियम के तहत बल्कि "वर्तमान में लागू किसी अन्य कानून" के तहत भी प्रदान की गई हैं।कंपनी अधिनियम की धारा 433 इस प्रकार बताती हैः

"**433. परिसीमा**- परिसीमा अधिनियम, 1963 (36 सन् 1963) के प्रावधान, जहां तक हो सके, यथास्थिति, न्यायाधिकरण या अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही या अपील पर लागू होंगे।"

इस धारा में, इसकी अनुपस्थिति से, "इस अधिनियम के तहत" या "इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन" अभिव्यक्तियाँ उल्लेखनीय हैं। इसके विपरीत, धारा 424 (2) "इस अधिनियम के तहत" अभिव्यक्ति का उपयोग निम्नानुसार करती हैः

"424. न्यायाधिकरण और अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष प्रक्रिया -

XXX XXX XXX

(2) न्यायाधिकरण और अपीलीय न्यायाधिकरण के पास, इस अधिनियम के तहत या दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 के तहत अपने कार्यों का निर्वहन करने के उद्देश्यों के लिए, वही शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का

5) के तहत एक दीवानी अदालत में निहित हैं, जब वे निम्नलिखित मामलों के संबंध में एक मुकदमे की सुनवाई करते हैं, अर्थात्:-

(ए) किसी भी व्यक्ति को समन करना और उसको हाजिर कराना और शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और उन्हे करने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथ पत्रों पर साक्ष्य प्राप्त करना;

(घ) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1 सन् 1872) की धारा 123 और 124 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, किसी भी लोक अभिलेख या दस्तावेज या किसी कार्यालय से ऐसे अभिलेख या दस्तावेज की प्रति की अपेक्षा करना;

(ङ) गवाहों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना;

(च) किसी अभ्यावेदन को ब्यतिक्रम के लिए खारिज करना या उसे एकतरफा निर्णय देना;

(छ) किसी अभ्यावेदन को ब्यतिक्रम के लिए खारिज करने के किसी भी आदेश या उसके द्वारा एकतरफा पारित किसी आदेश को अपास्त करना; और

(ज) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाए।"

(जोर दिया गया)

निश्चित रूप से संहिता की ग्यारहवीं अनुसूची (कंपनी अधिनियम, 2013 में संशोधन) इस प्रकार हैः

"1. धारा 2 में -

XXX XXX XXX

ख) खंड (94) के पश्चात् निम्नलिखित खंड अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात्-

"(94-क)" "परिसमापन" "का अर्थ है इस अधिनियम के तहत परिसमापन या दिवाला और दिवालियापन संहिता, 2016 के तहत परिसमापन, जैसा लागू हो।""""

8. यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि कंपनी अधिनियम की धारा 434 (1) (सी) के तहत, कंपनी अधिनियम के तहत सभी कार्यवाहियां, जिनमें ऐसी तारीख से तुरंत पहले किसी भी जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित, कंपनियों के समापन से संबंधित कार्यवाहियां शामिल हैं, न्यायाधिकरण को हस्तांतरित हो जाएंगी और न्यायाधिकरण ऐसी कार्यवाहियों को, स्थानांतरित होने से पहले के चरण से, निपटाने के लिए आगे बढ़ सकता है। यह धारा इस मायने में भी महत्वपूर्ण है कि यह इंगित करती है कि कंपनी अधिनियम के तहत, मध्यस्थता, समझौता, व्यवस्था और पुनर्निर्माण और कंपनियों के समापन से संबंधित कार्यवाही, जो जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थी, अब न्यायाधिकरण को हस्तांतरित की जा सकती है। **इनमें से प्रत्येक कार्यवाही सीधे परिसीमा** अधिनियम द्वारा शासित होगी क्योंकि वे अदालतों के समक्ष कार्यवाही हैं। जाहिर है, न्यायाधिकरण को ऐसी कार्यवाहियों के हस्तांतरण पर, यह नहीं कहा जा सकता है कि क्योंकि ये कार्यवाहियां अब न्यायाधिकरण के समक्ष हैं, इसलिए परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होगा। इसके अलावा, संहिता लागू होने के बाद किए गए नए आवेदनों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसे आवेदनों पर, परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होगा, लेकिन जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय से स्थानांतरित किए गए आवेदनों पर, परिसीमा अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे। विशेष रूप से, उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित परिसमापन कार्यवाही को संहिता लागू करके, आगे के निर्णय के लिए एन. सी. एल. टी. को हस्तांतरित किया जाना है, न कि कंपनी अधिनियम। यह कंपनी (लंबित कार्यवाहियों का अंतरण) नियम, 2016 के नियम 5 को पढ़ने पर स्पष्ट हो जाता है, जो इस प्रकार हैः

"5. समापन की लंबित कार्यवाहियों का ऋण अदा करने में अयोग्यता के आधार पर अंतरण- (1) समापन से संबंधित सभी याचिकाएं जो अधिनियम[5] की धारा 433 के खंड (इ) के अन्तर्गत उसके ऋण चुकाने की अयोग्यता के आधार पर जो उच्च न्यायालय मे लंबित है और कंपनी(न्यायालय) नियम 1959 के नियम 26 के अन्तर्गत यथा अपेक्षित याचिका को प्रतिवादी को तामील नहीं किया गया है वह अधिनियम की धारा 419 की उप धारा (4) के अन्तर्गत स्थापित अधिकरण की पीठ को अंतरित हो जायेगी जो प्रादेशिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा है और ऐसी याचिकाओं को संहिता के धारा 7,8 और 9 के अन्तर्गत जैसा भी मामला हो, आवेदन माना जाएगा और संहिता के भाग II के अमुसार इनका निपटान किया जाएगाः

परन्तु याची सभी सूचनाएं नियम 7 के अनुसार अंतरित अभिलेख का जो भाग बनता है कि सूचनाओं से भिन्न, प्रस्तुत करेगा जो संहिता की धारा 7,8 या 9 के अन्तर्गत याचिका को स्वीकार करने के लिए आवश्यक है, जैसा भी मामला, जिसमे प्रस्तावित दिवाला ब्यवसायियों के विवरण शामिल हैं, अधिकरण को इस अधिसूचना के 60 दिवस के भीतर देने होंगे, ऐसा न होने पर याचिका रद्द हो जाएगा।

बशर्ते कि याचिकाओं का कोई भी पक्ष या पक्ष 15 जुलाई, 2017 के बाद संहिता की धारा 7 या 8 या 9 के तहत संहिता के प्रावधानों के अनुसार नए आवेदन दायर करने का पात्र होगाः

बशर्ते कि जहां किसी कंपनी को बंद करने से संबंधित याचिका इस नियम के तहत न्यायाधिकरण को हस्तांतरित नहीं की जाती है और उच्च न्यायालय में बनी रहती है और जहां 15 दिसंबर, 2016 तक उसी कंपनी के

[5] कंपनियां(लंबित कार्रवाइयों का अंतरण) नियम 2016 का नियम 2(2) अधिनियम का अर्थ कंपनी अधिनियम 1956 परिभासित करता है।

खिलाफ बंद करने के लिए अधिनियम की धारा 433 के खंड (ई) के तहत एक और याचिका लंबित है, ऐसी अन्य याचिका न्यायाधिकरण को स्थानांतरित नहीं की जाएगी, भले ही याचिका प्रत्यर्थी को नहीं दी गई हो।"

9. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 433 न्यायाधिकरण पर तब भी लागू होगी जब वह संहिता की धारा 7 और 9 के तहत आवेदनों पर निर्णय लेता है।

10. इस मामले को थोड़े अलग कोण से देखा जा सकता है। **राष्ट्रीय सिलाई धागा कंपनी लिमिटेड बनाम जेम्स चैडविक और ब्रदर्स लिमिटेड**, 1953 एस.सी.आर. 1028, मे इस न्यायालय ने ट्रेड मार्क अधिनियम की धारा 76 के तहत पंजीयक के किसी भी निर्णय के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील पर विचार किया। यह तर्क दिया गया था कि लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के प्रावधान धारा 76 के तहत दायर की जाने वाली ऐसी अपील की ओर आकर्षित नहीं होंगे। इस न्यायालय ने यह कहते हुए इसे अस्वीकार कर दियाः

> ".....ट्रेड मार्क्स एक्ट उच्च न्यायालय में उस अपील के भविष्य के संचालन या करियर के लिए कोई प्रक्रिया प्रदान या निर्धारित नहीं करता है, वास्तव में अधिनियम की धारा 77 में प्रावधान है कि उच्च न्यायालय अगर चाहे तो मामले में नियम बना सकता है। जाहिर है कि अपील के उच्च न्यायालय में पहुँचने के बाद इसका निर्धारण उस न्यायालय के व्यवहार के नियमों और प्रक्रिया के अनुसार और उस चार्टर के प्रावधानों के अनुसार किया जाना चाहिए जिसके तहत उस न्यायालय का गठन किया गया है और जो उस अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने की विधि और तरीके के संबंध में उसे शक्ति प्रदान करता है। सुस्थापित नियम है कि जब कोई क़ानून निर्देश देता है कि एक अपील पहले से ही स्थापित न्यायालय में होगी, तो उस अपील को उस

न्यायालय के अभ्यास और प्रक्रिया द्वारा विनियमित किया जाना चाहिए।

.....

यद्यपि उपरोक्त नियम निर्धारित करने वाले मामलों के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों के बिल्कुल समान नहीं थे, लेकिन उसमें प्रतिपादित सिद्धांत सामान्य अनुप्रयोग में से एक है और वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के लिए एक उपयुक्त अनुप्रयोग है। ट्रेड मार्क्स अधिनियम की धारा 76 उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्रदान करती है और इसके बारे में और कुछ नहीं कहती है। ऐसा होने पर, उच्च न्यायालय को धारा 76 द्वारा प्रदत्त अपीलीय अधिकारिता के रूप में अभिगृहीत होने के कारण, उसे उस अधिकारिता का प्रयोग उसी तरह करना होगा जैसे वह अपनी अन्य अपीलीय अधिकारिता का प्रयोग करता है और जब ऐसी अधिकारिता का प्रयोग एकल न्यायाधीश द्वारा किया जाता है, तो उसका निर्णय लेटर पेटेंट के खंड 15 के तहत अपील के अधीन हो जाता है, जिसमें ट्रेड मार्क अधिनियम में इसके विपरीत कुछ भी नहीं है।

(1033-1034 पर)

11. इस तथ्य को देखते हुए कि एन. सी. एल. टी. पर लागू होने वाली "प्रक्रिया" परिसीमा अधिनियम में निहित प्रक्रिया होगी, यह स्पष्ट है कि एन. सी. एल. टी. को संहिता के तहत किए गए आवेदनों पर उसी तरह निर्णय लेना होगा जैसे वह कंपनी अधिनियम के तहत अपने अन्य अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है। यह कानून में स्थिति होने के कारण, यह स्पष्ट है कि जब कंपनी अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों को संहिता की ग्यारहवीं अनुसूची द्वारा संशोधित किया गया था, तो कंपनी अधिनियम की धारा 433 को संहिता में लागू करना और अनुकूलित करना अनावश्यक था, जैसा कि कंपनी अधिनियम की विभिन्न अन्य धाराओं के लिए किया गया था।

12. अगले तर्क पर आते हुए कि, किसी भी मामले में, धारा 238 ए, कानून का स्पष्टीकरण करने वाली और प्रकृति में प्रक्रियात्मक होने के कारण, इसे पूर्वव्यापी माना जाना चाहिए, इसके लिए कुछ निर्णयों का उल्लेख करना आवश्यक है। इस न्यायालय ने **एम. पी. स्टील कार्पोरेशन बनाम सी. सी. ई.**, (2015) 7 एस. सी. सी. 58 में, यह अवधारित किया-

> "**54.** यह सुनिश्चित कानून है कि परिसीमा की अवधि प्रक्रियात्मक प्रकृति की होती है और इसे आम तौर पर पूर्वव्यापी रूप से लागू किया जाएगा। हालाँकि, यह एक राइडर के अधीन है। *न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनामशांति मिश्रा* [(1975) 2 एस. सी. सी. 840:(1976) 2 एस.सी.आर. 266], मे इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः(एस. सी. सी. पृष्ठ 844, पैरा 5)
>
> 5. "धारा 110-ए और 110-एफ की सरल भाषा के आलोक मे यह विचार रखने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि कानून में परिवर्तन केवल अधिकरण का परिवर्तन था, अर्थात विशेषणात्मक या प्रक्रियात्मक कानून का परिवर्तन, न कि मूल कानून का। यह सुस्थापित सिद्धान्त है कि कानून का ऐसा परिवर्तन पूर्वव्यापी रूप से संचालित होता है और, भले ही अधिकरण के परिवर्तन से पहले उसका कार्रवाई का कारण या कार्रवाई का अधिकार अर्जित हो, व्यक्ति को नए अधिकरण मे जाना पड़ता है । उसके पास कार्रवाई का निहित अधिकार होगा लेकिन अधिकरण का निहित अधिकार नहीं होगा। यदि स्पष्ट शब्दों द्वारा नया अधिकरण केवल अधिकरण के निर्माण के बाद उत्पन्न होने वाली कार्रवाई के कारणों के लिए उपलब्ध कराया जाता है, तो कानून के पूर्वव्यापी संचालन को हटा दिया जाता है। अन्यथा सामान्य नियम यह है कि इसे पूर्वव्यापी बनाया जाए।"

55. मोटर वाहन अधिनियम की धारा 110-ए के तहत उठे एक सवाल के जवाब में इस अदालत ने कहाः(*शांति मिश्रा मामला* [(1975) 2 एससीसी 840:(1976) 2 एससीआर 266], एससीसी पृष्ठ 846, पैरा 7)

7."..... (1) धारा 110-ए के तहत आवेदन दायर करने के उद्देश्य से समय, न्यायाधिकरण के गठन के पूर्व चलना शुरू नहीं हुआ। मुकदमा दायर करने के लिए समय चलना शुरू हो गया था लेकिन इसकी अवधि समाप्त होने से पहले ही अधिकरण बदल दिया गया था। और बदले हुए अधिकरण के उद्देश्य के लिए, नए अधिकरण पर जाने का उपाय उपलब्ध कराने से पहले समय शुरू नहीं माना जा सकता था।

(2) भले ही मोटे तौर पर परिसीमा कानून को एक प्रक्रियात्मक कानून माना गया है, लेकिन इस सिद्धांत के अपवाद हैं। आम तौर पर परिसीमा का कानून जो कार्रवाई शुरू होने की तारीख को प्रचलित है, इसे नियंत्रित करता है। लेकिन इस सिद्धांत के कुछ अपवाद हैं। लंबी अवधि प्रदान करने वाला परिसीमा का नया कानून, एक मृत उपचार को पुनर्जीवित नहीं कर सकता है। *न ही यह कम अवधि की परिसीमा का प्रावधान करके कार्रवाई के निहित अधिकार को अचानक समाप्त कर सकता है।*""

(मूल में जोर)

56. कानून के इस कथन को *विनोद गुरुदास रायकर बनाम राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड* [(1991)4 एस. सी. सी. 333] मे अनुमोदन के साथ संदर्भित किया गया था जो निम्नानुसार हैः(एस. सी. सी. पृष्ठ 337, पैरा 7)

7."यह सच है कि अपीलकर्ता पहले सीमा की अवधि समाप्त होने के छह महीने से अधिक समय बाद भी आवेदन दायर कर सकता था, लेकिन क्या इसे एक अधिकार माना जा सकता है जिसे अपीलार्थी ने प्राप्त किया था। इसका जवाब

नकारात्मक है। मुआवजे का दावा, जिसका अपीलार्थी दुर्घटना के कारण हकदार था, निश्चित रूप से एक अधिकार के रूप में लागू करने योग्य था। जहाँ तक कानूनी कार्यवाही शुरू करने के लिए परिसीमा की अवधि का संबंध है, यह प्रकृति में विशेषणात्मक है, और इसे नए अधिनियम द्वारा नियंत्रित किया जाना है- दो शर्तों के अधीन। यदि निरस्तीकरण अधिनियम के तहत उपचार अचानक सीमा की एक छोटी अवधि के परिणामस्वरूप वर्जित हो जाता है, तो इसे मामले को नियंत्रित करने के लिए नहीं माना जा सकता है, अन्यथा परिणाम दावेदार को अर्जित अधिकार से वंचित करना होगा। दूसरा अपवाद यह है कि जहाँ नया अधिनियम दावेदार को कानूनी कार्यवाही शुरू करने के लिए इतनी कम अवधि के लिए छोड़ देता है ताकि उसके लिए उपचार का लाभ उठाना अव्यावहारिक हो जाए। इस न्यायालय ने कई मामलों में इस सिद्धांत का पालन किया है और उदाहरण के रूप में हम *न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम शांति मिश्रा* [(1975) 2 एससीसी 840:(1976) 2 एससीआर 266] का उल्लेख करना चाहूंगा। उस मामले में प्रतिवादी के पति की 1966 में एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। हर्जाने की वसूली के लिए मुकदमा दायर करने के लिए प्रत्यर्थी को दो साल की अवधि उपलब्ध थी। मार्च 1967 में मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 110 के तहत दावा न्यायाधिकरण का गठन किया गया, जिसमें दीवानी अदालत के अधिकार क्षेत्र को वर्जित कर दिया गया था और परिसीमा की अवधि के रूप में 60 दिन निर्धारित किए गए थे। प्रत्यर्थी ने जुलाई 1967 में आवेदन दायर किया। यह माना गया था कि मार्च 1967 से पहले मुकदमा नहीं दायर किये जाने पर प्रत्यर्थी का एकमात्र उपाय न्यायाधिकरण के समक्ष एक आवेदन के माध्यम से था। जहाँ तक परिसीमा की अवधि का संबंध था, यह अवधारित किया गया कि कम अवधि का उपबन्ध करने वाला परिसीमा का एक नया कानून निश्चित रूप से

कार्रवाई के निहित अधिकार को समाप्त नहीं कर सकता है। कानून के परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायाधिकरण के गठन के बाद एक उचित समय के भीतर आवेदन दायर किया जा सकता है; और, कि प्रतिवादी द्वारा न्यायाधिकरण के गठन के बाद उससे संपर्क करने में लिए गए लगभग चार महीने के समय को या तो उचित समय माना जा सकता है या धारा 110-ए (3) के परंतुक के तहत लगभग दो महीने की देरी को माफ किया जा सकता है।

"इन दोनों निर्णयों का *भारत संघ बनाम हरनाम सिंह* में उल्लेख और पालन किया गया था में उल्लेख और पालन किया गया था [(1993) 2 एस. सी. सी. 162, 1993 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 375:(1993) 24 एटीसी 92] पैरा 12 देखें।

57. उपरोक्त सिद्धांत परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 30 (ए) में भी निहित हैः

30 " मुकदमों आदि के लिए प्रावधान, जिसके लिए निर्धारित अवधि भारतीय **परिसीमा अधिनियम, 1908** ***द्वारा निर्धारित अवधि से कम है -*** इस अधिनियम में कुछ भी निहित होने के बावजूद **-**

(क) कोई भी वाद जिसके लिए परिसीमा की अवधि भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1908 द्वारा निर्धारित परिसीमा की अवधि से कम है, इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद अगले सात वर्षों की अवधि के भीतर या भारतीय सीमा अधिनियम, 1908 द्वारा ऐसे वाद के लिए निर्धारित अवधि के भीतर, जो भी अवधि पहले समाप्त हो, दायर किया जा सकता है।"

58. उक्त सिद्धांत का कारण खोजना दूर की बात नहीं है। यद्यपि परिसीमा अवधि, प्रक्रियात्मक विधि होने के कारण, पूर्वव्यापी रूप से लागू की जानी है, फिर भी यदि किसी क़ानून में बाद के संशोधन द्वारा परिसीमा की एक छोटी अवधि प्रदान की जाती है, तो

ऐसी अवधि क़ानून में निहित कार्रवाई के निहित अधिकार को निरर्थक बना देगी क्योंकि कार्रवाई का ऐसा अधिकार अब संशोधित प्रावधान के तहत समय-बाधित हो जाएगा।

59. मामले के इस पहलू को तिरुमलाई केमिकल्स लिमिटेड बनामभारत संघ (2011) 6 एस. सी. सी.739:(2011) 3 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 458] मे काफी अच्छी तरह से सामने लाया गया है जो निम्नानुसार हैः(एस. सी. सी. पृष्ठ 748-49, पैरा 22-26)

> 22. "कानून सुनिश्चित है कि जिस तरीके से अपील दायर की जानी है, उसका प्रारुप और जिस अवधि के भीतर उसे दायर किया जाना है, वे प्रक्रिया के मामले हैं, जबकि किसी पक्ष को अपील दायर करने का अधिकार एक मूल अधिकार है। सवाल यह है कि फेमा की धारा 19 (2) के तहत विलंबित अपील पर विचार करते समय, देरी की माफी के लिए आवेदन पर फेरा की धारा 52 की उप-धारा (2) के पहले परंतुक के तहत या फेमा की धारा 19 की उप-धारा (2) के परंतुक के तहत विचार किया जाना चाहिए। उस प्रश्न का उत्तर देने के लिए इस मुद्दे पर कानून की जांच करना आवश्यक है।
>
> *सारभूत और प्रक्रियात्मक कानून*
>
> 23. सारभूत कानून नियमों के एक निकाय को संदर्भित करता है जो अधिकारों और देनदारियों का निर्माण, परिभाषित और विनियमन करता है। किसी आदेश के खिलाफ अपील करने के लिए किसी पक्ष को प्रदान किया गया अधिकार एक कानून द्वारा प्रदान किया गया एक सारभूत अधिकार है जो कानून में बाद के परिवर्तनों से अप्रभावित रहता है, जब तक कि स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा संशोधित नहीं किया जाता है। प्रक्रियात्मक कानून उन अधिकारों और देनदारियों को निर्धारित करने के लिए एक कार्यविधि और उन्हें लागू करने के लिए एक कार्यतंत्र स्थापित करता है। अपील का अधिकार एक सारभूत अधिकार होने के नाते हमेशा भविष्यलक्षी

रूप से कार्य करता है। यह साधारण कानून है कि प्रत्येक क़ानून भविष्यलक्षी है जब तक कि यह स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा पूर्वव्यापी संचालन के लिए नहीं किया जाता है।

24. अपील का अधिकार एक सारभूत अधिकार हो सकता है लेकिन परिसीमा की अवधि सहित अपील दायर करने की प्रक्रिया को सारभूत अधिकार नहीं कहा जा सकता है, और एक पीड़ित व्यक्ति किसी भी निहित अधिकार का दावा, यह दावा करने हेतु नहीं कर सकता है, कि उसे परिसीमा की अवधि से संबंधित पुराने प्रावधान द्वारा शासित किया जाना चाहिए। प्रक्रियात्मक कानून पूर्वव्यापी है जिसका अर्थ है कि यह निरस्त अधिनियम के तहत कार्यों या लेनदेन पर भी लागू होगा।

25. इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में इस विषय पर कानून पर भी विस्तार से विचार किया गया है और उनमें से कुछ निर्णयों का संदर्भ दिया जा सकता है। इस न्यायालय ने *गरिकापति वीराया बनाम एन. सुब्बैया चौधरी* [ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 540], *न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम.शांति मिश्रा* [(1975) 2 एस. सी. सी. 840:(1976) 2 एस. सी. आर. 266], हितेंद्र विष्णु ठाकुर बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1994) 4 एससीसी 602:1994 एस. सी. सी. (सीआर आई.) 1087] चिंतामणि सरन नाथ शाहदेव बनाम बिहार राज्य (1999)8 एससीसी 16] और श्याम सुंदर बनाम राम कुमार [(2001) 8 एससीसी 24], मे एक संशोधनकारी विधान के परिक्षेत्र और परिधि और इसकी पूर्वव्यापिता पर विस्तार से चर्चा की है और अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्येक वादी को सारभूत कानून में निहित अधिकार है लेकिन प्रक्रियात्मक कानून में ऐसा कोई अधिकार मौजूद नहीं है। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अधिकरण और परिसीमा से संबंधित कानून

प्रक्रियात्मक प्रकृति का है जबकि अपील के अधिकार से संबंधित कानून, भले ही उपचारात्मक हो, सारभूत प्रकृति का होता है।

26. इसलिए, जब तक कि उपयोग की जाने वाली भाषा स्पष्ट रूप से, व्यक्त शब्दों में या आवश्यक निहितार्थ से अन्यथा इरादा, निहित अधिकारों को निर्निहित करने वाले क़ानून को भविष्यलक्षी के रूप में प्रकट नहीं करती है, तब तक एक क़ानून को केवल प्रक्रियात्मक के रूप में पूर्वव्यापी माना जाना चाहिए और एक क़ानून जो अपने चरित्र में प्रक्रियात्मक होने के बावजूद निहित अधिकारों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है, उसे भविष्यलक्षी के रूप में माना जाना चाहिए।"

60. श्री ए. के. सांघी ने इस निर्णय पर इस प्रतिपादन के लिए दृढ़ता से भरोसा किया था कि अपील को दायर करने की तारीख को लागू कानून, अपील दायर करने के लिए कार्रवाई के कारण के उत्पन्न होने की तारीख की परवाह किए बिना, परिसीमा की अवधि को नियंत्रित करेगा। आम तौर पर ऐसा ही हो सकता है। **जैसा कि ऊपर देखा गया है, परिसीमा की अवधि** प्रकृति में प्रक्रियात्मक होने के कारण पूर्वव्यापी रूप से लागू होगी।तिरुमलाई मामले [(2011) 6 एस. सी. सी. 739:(2011) 3 एस. सी. सी. (सी. आई. वी.) 458] में फैसले के तथ्यों पर, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम के निरस्त प्रावधान, नामतः धारा 52, 1.6.2000 के बहुत बाद दायर अपील पर, जब विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम को निरस्त करते हुए विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम प्रवृत्त हुआ, लागू नहीं होगी। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि निरस्त अधिनियम की धारा 52 (2) में 45 दिन और पुनः 45 दिन से अधिक की परिसीमा की अवधि का प्रावधान नहीं था जबकि विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम की पूर्वोक्त धारा 19(2) में 45 दिनों के पश्चात् पर्याप्त कारण पर देरी को माफ करने के लिए कोई उपरी सीमा नहीं दी गई है। तथ्यों पर, उस

मामले में, अपील को धारा 19 के तहत सम्यक रूप से दायर अभिनिर्धारित किया गया था, जिसमें यथोक्त, देरी को माफ करने की कोई उपरी सीमा नहीं थी। अतः यह अभिनिर्धारित किया गया कि उस मामले में अपीलीय न्यायाधिकरण 90 दिनों की अवधि समाप्त होने के बाद भी अपील पर विचार कर सकता है बशर्ते देरी का पर्याप्त कारण बताया गया हो।"

इस निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि परिसीमा, प्रकृति में प्रक्रियात्मक होने के कारण, सामान्य रूप से पूर्वव्यापी रूप से लागू की जाएगी, सिवाय इसके कि परिसीमा का नया कानून एक मृत उपचार को पुनर्जीवित नहीं कर सकता है। यह परिसीमा के एक नए कानून के संदर्भ में कहा गया जो पहले की तुलना में लंबी अवधि के लिए परिसीमा प्रदान करता है। वर्तमान मामले में, ये टिप्पणियां अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त हैं। संहिता लागू होने के बाद 2016 या 2017 में दायर किया गया एक आवेदन अचानक उस ऋण को पुनर्जीवित नहीं कर सकता है जो अब देय नहीं है क्योंकि यह समय-बाधित है।

13. **केरल राज्य बनाम वी. आर. कल्लियानिकुट्टी**, (1999) 3 एस. सी. सी.657, ("**वी. आर. कल्लियानिकुट्टी**") मे इस न्यायालय ने इस बात पर विचार किया कि क्या 1968 के केरल राजस्व वसूली अधिनियम के तहत वसूली कार्यवाही का सहारा लेकर समयबाधित ऋण की वसूली की जा सकती है। यह कहते हुए कि उक्त अधिनियम समयबाधित ऋण की वसूली तक विस्तारित नहीं हो सकता है, इस न्यायालय ने पैराग्राफ 8 में कहा,

> **"8**. ..... प्रत्येक मामले में "देय" शब्द का सटीक अर्थ उस संदर्भ पर निर्भर करेगा जिसमें वह शब्द प्रकट होता है।"

उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि केरल राजस्व वसूली अधिनियम, 1968 की धारा 17 (3) में यह स्पष्ट किया गया है कि विरोध के तहत भुगतान करने

वाले व्यक्ति को विरोध के तहत उसके द्वारा भुगतान की गई राशि के पूरे या अंश की वापसी के लिए मुकदमा दायर करने का अधिकार होगा। इस प्रकार यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब इस तरह का मुकदमा दायर करने का अधिकार स्पष्ट रूप से संरक्षित किया जाता है, तो एक आवश्यक निहितार्थ है कि एक मुकदमे में एक देनदार के लिए उपलब्ध परिसीमा की ढाल को भी संरक्षित किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप, समय-बाधित ऋणों को शामिल करने के लिए "देय राशि" अभिव्यक्ति की व्यापक व्याख्या लेनदार द्वारा उसके खिलाफ मुकदमे में एक देनदार के लिए उपलब्ध एक महत्वपूर्ण बचाव को नष्ट कर देगी, और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन हो सकता है।

14. अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा निर्दिष्ट एक अन्य निर्णय **भारत संघ बनाम उत्तम स्टील लिमिटेड** (2015)13 एससीसी 209 है। यहाँ सवाल यह था कि क्या केंद्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, जैसा कि 12.05.2000 को संशोधित किया गया, की धारा 11-बी उस मामले में तथ्य स्थिति पर लागू होगी है। धारा 11-बी ने "छह महीने" को "एक वर्ष" के साथ प्रतिस्थापित करके परिसीमा की एक लंबी अवधि प्रदान की। चूंकि छूट का आवेदन एक वर्ष की अवधि के भीतर दायर किया गया था, इसलिए प्रत्यर्थी ने तर्क दिया कि वे समय के भीतर थे। इस न्यायालय ने पैराग्राफ 10 में अभिनिर्धारित किया कि प्रक्रिया संबंधी कानून होने के कारण यह परिसीमा आमतौर पर पूर्वव्यापी प्रकृति की होगी। हालाँकि यह एक परंतुक के साथ जोड़ा गया है, जो यह है कि संशोधित प्रावधान के तहत किया गया दावा स्वयं इस अर्थ में एक मृत दावा नहीं होना चाहिए था कि यह संशोधन अधिनियम, जिसने लंबी परिसीमा अवधि लायी, के प्रवृत्त होने से पहले समय-बाधित था। उस मामले के तथ्यों पर, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चूंकि छूट का दावा छह महीने की अवधि से आगे, लेकिन एक वर्ष की विस्तारित अवधि के भीतर किया गया था, ऐसी विस्तारित अवधि उस मामले में प्रत्यर्थी को लाभ नहीं देगी।

15. **एलाइड मोटर्स (पी) लिमिटेड बनाम सीआईटी**, (1997) 3 एससीसी 472, मे इस न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि आयकर अधिनियम की धारा 43-बी में किया गया संशोधन पूर्वव्यापी था, अभिनिर्धारित किया गयाः

> "**14**. जैसा कि जी. पी. सिंह ने अपने *सांविधिक व्याख्या के सिद्धांतों* चतुर्थ संस्करण पृष्ठ 291 में कहा है, "यह सुस्थापित है कि यदि कोई क़ानून उपचारात्मक है या केवल पिछले कानून की घोषणात्मक है, तो आम तौर पर पूर्वव्यापी संचालन का इरादा होता है।" वास्तव में यह संशोधन ऐसी स्थिति में अपने उद्देश्य को पूरा नहीं करेगा जब तक कि इसे पूर्वव्यापी नहीं माना जाता है।"

वर्तमान मामले में भी, यह स्पष्ट है कि धारा 238ए का संशोधन तब तक अपने उद्देश्य को पूरा नहीं करेगा जब तक कि इसे पूर्वव्यापी नहीं माना जाता है, अन्यथा, समय-बाधित दावों को फिर से शुरू करने की मांग करने वाले आवेदनों को, परिसीमा कानून द्वारा शासित नहीं होने के कारण, अनुमति देनी होगी।

16. हम **एस. बी. आई. बनाम वी. रामकृष्णन**, (2018) एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 963 में इस न्यायालय के हाल के एक निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें इस न्यायालय ने उसी दिवाला विधि समिति की रिपोर्ट का उल्लेख करने के बाद यह अभिनिर्धारित किया कि संहिता की धारा 14 में किया गया संशोधन, जिसमें धारा 14 द्वारा निर्धारित अधिस्थगन गारंटरों पर लागू नहीं होने के लिए अभिनिर्धारित किया गया था, को स्पष्टीकरणात्मक और इसलिए, प्रकृति में पूर्वव्यापी माना गया था, उद्देश्य यह है कि धारा 14 की एक व्यापक व्याख्या को यह स्पष्ट करते हुए विराम दिया जाना चाहिए कि यह शुरुआत से ही कभी भी धारा 14 का इरादा नहीं था।

17. अब हम श्री ढोलकिया द्वारा उद्धृत कुछ निर्णयों पर आते हैं। **झारखंड राज्य बनाम शिवम कोक इंडस्ट्रीज**, (2011) 8 एस. सी. सी. 656, मे इस न्यायालय ने बिहार

वित्त अधिनियम, 1981 की धारा 46 (4) का अर्थ लगाते हुए कहा कि परिसीमा अधिनियम को पुनरीक्षण की स्वतः संज्ञान शक्ति के प्रयोग में नहीं पढ़ा जा सकता है।यही कारण था कि सीमा अधिनियम अदालतों पर लागू होता है न कि अर्ध-न्यायिक निकायों पर। ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए, न्यायालय ने आगे कहाः

> "**46**. हालाँकि, हम इस स्थिति से सहमत होंगे कि इस तरह की शक्ति का प्रयोग पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा अनिश्चित काल के लिए नहीं किया जा सकता है। हमारी सुविचारित राय में, ऐसी असाधारण शक्ति अर्थात स्वतः पुनरीक्षण कार्यवाही शुरू करने की शक्ति का प्रयोग एक उचित अवधि के भीतर किया जाना चाहिए और उचित अवधि क्या है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। इस प्रतिपादन के लिए, इस न्यायालय के कई निर्णयों को संदर्भित किया जा सकता है जिन पर प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित वकील द्वारा भी भरोसा किया गया।"

इस निर्णय का हमारे समक्ष विवाद पर कोई सीधा असर नहीं है, सिवाय इसके कि जहां पर परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होना अभिनिर्धारित किया गया था, वहां भी पुनरीक्षण प्राधिकरण की शक्ति का प्रयोग किसी भी समय नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसका उपयोग उचित अवधि के भीतर किया जाना चाहिये था, अन्यथा, इसे परिसीमा के सदृश सिद्धांत, अर्थात् विलंब द्वारा वर्जित किया जाएगा।

18. उत्तरदाताओं के लिए विद्वान वकील ने **बॉम्बे डाइंग एंड मैनुफैक्चरिंग कं. लिमिटेड बनाम बम्बई राज्य**,1958 एससीआर 1122 ("**बॉम्बे डाइंग**") को तब संदर्भित किया और भरोसा किया । इस मामले में, न्यायालय का सारोकार बॉम्बे श्रम कल्याण निधि अधिनियम से था जिसमें अधिकार के नुकसान और उपचार के नुकसान के बीच प्रसिद्ध अंतर को इस प्रकार दोहराया गया थाः

"यह देखा जाएगा कि "अवैतनिक संचय" की परिभाषा केवल उन कर्मचारियों के देयता को सन्दर्भित करती है जो देय होने के बाद तीन साल की अवधि के भीतर अवैतनिक रहते हैं। विधायिका का इरादा स्पष्ट रूप से यह था कि कर्मचारियों के दावे जो समय के भीतर हैं, उन्हें कानून के सामान्य प्रक्रिया द्वारा लागू करने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए, और यह कि जब वे समय-बाधित और उनके लिए बेकार हो जाते हैं, तभी राज्य को कदम उठाना चाहिए और उन्हें अपने हाथ में लेना चाहिए। इस पर विचार के लिए सवाल उठता है कि क्या एक ऋण, जो समय-बाधित है, हस्तांतरण का विषय हो सकता है, और यदि ऐसा हो सकता है, तो यह बोर्ड को इसे लेने के लिए कैसे लाभान्वित कर सकता है यदि इसे कानून की प्रक्रिया से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अब, यह इस देश का स्थापित कानून है कि परिसीमा का क़ानून केवल उपचार को रोकता है लेकिन ऋण को समाप्त नहीं करता है। परिसीमा अधिनियम की धारा 28 में प्रावधान है कि जब किसी व्यक्ति द्वारा किसी संपत्ति पर कब्जा करने के लिए मुकदमा दायर करने की अवधि समाप्त हो जाती है, तो ऐसी संपत्ति पर उसका अधिकार समाप्त हो जाता है। और निर्णायकों ने यह अभिनिर्धारित किया है-और सही भी है, कि जब संपत्ति कब्जे में लेने योग्य नहीं है, उदाहरण के लिए, एक ऋण, तो धारा का कोई अनुप्रयोग नहीं है, और समय बीतने से किसी व्यक्ति का उसमे अधिकार समाप्त नहीं होता है। अनुबंध अधिनियम की धारा 25 (3) के तहत, राशि का भुगतान करने के नए वादे के लिए एक वर्जित ऋण अच्छा प्रतिफल है। जब एक ऋणी बिना किसी निर्देश के भुगतान करता है कि इसे कैसे विनियोजित किया जाना है, लेनदार को इसे वर्जित ऋण के लिए विनियोजित करने का अधिकार है। (अनुबंध अधिनियम की धारा 60 के अनुसार)। यह भी

अभिनिर्धारित हुआ है कि एक लेनदार जमानतदार से ऋण की वसूली करने का हकदार है, भले ही प्रमुख देनदार के खिलाफ मुकदमा वर्जित है। *महंत सिंह बनाम यू. बा. यी.* [(1939) एल. आर. 66 आई. ए. 198], *सुब्रमनिया अय्यर बनाम गोपाल अय्यर* [(1910) आई. एल. आर. 33 मद्रास 308] और *दिल मुहम्मद बनाम सैन दास* [ए. आई. आर. 1927 लाहौर 396 के अनुसार] और जब किसी लेनदार के पास ऋण के लिए प्रतिभूति के माध्यम से माल पर ग्रहणाधिकार होता है, तो वह ऋण की तुष्टि के लिए ग्रहणाधिकार लागू कर सकता है, भले ही उस पर कार्रवाई समय-बाधित हो। नरेंद्र लाल खान बनाम तरुबाला दासी (1921) आई. एल. आर. 48 कलकत्ता 817,823] ....."[6].

(1134-1135 पर)

अनुबंध अधिनियम की धारा 25 (3) को इस निर्णय द्वारा संदर्भित किया गया था। यह धारा इस तथ्य पर आधारित है कि भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 के तहत, "प्रतिफल" को धारा 2 (डी) में पुराने प्रतिफल को शामिल करने के रूप में परिभाषित किया गया है, एक ऐसी धारणा जो अंग्रेजी कानून के लिए अज्ञात थी। यह सिद्धांत फील्ड्स ड्राफ्ट सिविल कोड, 1862[7], से आया था जो भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 के अधिनियमन के स्रोतों में से एक था। फील्ड्स ड्राफ्ट सिविल कोड की धारा 572 इस प्रकार हैः

---

[6] इसी तरह, पंजाब नेशनल बैंक बनाम एस. सिन्हा, 1993 सप्लीमेंट (1) एस. सी. सी. 499 में, इस न्यायालय ने शेष ऋण की वसूली के अधिकार के बीच प्रसिद्ध अंतर को दोहराया, भले ही ऐसा करने का उपाय सीमा कानून द्वारा बाधित किया जा सकता है (पैराग्राफ 5 देखें)।

[7] स्टेट आफ न्यूयार्क के लिये सिविल कोड का ड्राफ्ट, कोड के कमीशनरों द्वारा तैयार और जजों व अन्य के द्वारा परीक्षा के लिये प्रस्तुत, कमीशनरों द्वारा पुनरीक्षण के पूर्व (वीड, पार्सन और कंपनी प्रिंटर्स 1862) [फील्ड का सिविल कोड ड्राफ्ट]

"**§572**. वादा करने वाले पर निर्भर एक मौजूदा कानूनी या नैतिक दायित्व भी एक वादे के लिए एक अच्छा प्रतिफल है, जो दायित्व की सीमा के अनुरूप है, लेकिन आगे या अन्यथा नहीं।[8]".

19. श्री ढोलकिया ने अनुबंध अधिनियम की धारा 60 और 61 का भी उल्लेख किया और उन पर भरोसा किया जो यहां दिए गए हैंः

"**60. भुगतान का आवेदन जहाँ ऋण का निर्वहन किया जाना इंगित नहीं किया गया है** - जहाँ ऋणी ने जानकारी देना छोड़ दिया है, और ऐसी कोई अन्य परिस्थितियाँ नहीं हैं जो यह इंगित करती हैं कि भुगतान किस ऋण पर लागू किया जाना है, लेनदार इसे अपने विवेक से किसी भी वैध ऋण पर लागू कर सकता है जो वास्तव में शोध्य है और ऋणी से उसे देय है, चाहे उसकी वसूली मुकदमे की परिसीमा के सन्दर्भ में तत्समय लागू कानून द्वारा वर्जित है या नहीं है।

61. भुगतान आवेदन जहां कोई भी पक्ष विनियोग नहीं करता है - जहां कोई भी पक्ष कोई विनियोग नहीं करता है, वहाँ संदाय, समयक्रमानुसार में ऋणों के उन्मोचन में उपयोजित किया जाएगा, चाहे वे ऋण मुकदमों की परिसीमा सम्बंधी तत्समय प्रवृत्त कानून द्वारा वर्जित हों या न हों। यदि ऋण समकालिक हैं, तो भुगतान प्रत्येक के उन्मोचन मे आनुपाततः उपयोजित किया जाएगा।"

---

[8] डेविड डडली फील्ड जूनियर, न्यूयॉर्क राज्य के लिए ड्राफ्ट सिविल कोड के ड्राफ्ट्समैन, तीन प्रसिद्ध भाइयों में से एक थे।स्टीफन फील्ड, भाइयों में से एक, यू. एस. सुप्रीम कोर्ट के दूसरे सबसे लंबे समय तक सेवा करने वाले न्यायाधीश थे, जिन्होंने 34 वर्षों से अधिक समय तक सेवा की।वे एकमात्र न्यायाधीश थे जिन्हें राष्ट्रपति लिंकन द्वारा अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के दसवें न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया था।एक अन्य भाई, साइरस फील्ड, 1866 में कई असफल प्रयासों के बाद अटलांटिक केबल बिछाकर दो महाद्वीपों को जोड़ने के लिए प्रसिद्ध थे, और स्टीफन ज़्वेग की 'द टाइड ऑफ़ फॉर्च्यून' में अमर हो गए थे।

ये धाराएँ इस तथ्य को भी स्वीकार करती हैं कि परिसीमा उपचार को रोकती है लेकिन अधिकार को नहीं। जिस संदर्भ में धारा 60 प्रकट होती है, यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि धारा 60 में "वास्तव में शोध्य और उसे देय" वाक्यांश का उपयोग किया गया है" चाहे इसकी वसूली परिसीमा कानून द्वारा वर्जित है या नहीं। "वास्तव में" अभिव्यक्ति यह स्पष्ट करती है कि वास्तव में एक ऋण, परिसीमा के कानून के बावजूद, शोध्य और देय होना चाहिए। इससे यह अनुमान लगाना बहुत कठिन है कि अनुबंध अधिनियम के संदर्भ में, "शोध्. और देय" अभिव्यक्ति अपने आप में एक ऐसी राशि को संदर्भित करेगी जो देय हो सकती है, भले ही वह समय-बाधित हो, अन्यथा, धारा 60 के लिए बाद के शब्दों के साथ "वास्तव में" शब्द को शामिल करना अनावश्यक होगा, चाहे उसकी वसूली मुकदमे की परिसीमा के रूप में तत्समय लागू कानून द्वारा वर्जित है या नहीं।

20. श्री ढोलकिया ने **भीमसेन गुप्ता बनाम विश्वनाथ प्रसाद गुप्ता, इन री सर हरिलाल नेमचंद गोसलिया**, ए. आई. आर. 1950 बॉम्बे 74 का हवाला इस प्रतिपादन के लिये दिया कि "शोध्य और देय" ऋणों को "देय और वसूली योग्य" ऋणों से अलग किया जाना चाहिए।

पहले मामले में, बिहार भवन (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 की धारा 11 (1) (डी) एक किरायेदार को बेदखल करने का प्रावधान करती है, जहां किरायेदार द्वारा कानूनी रूप से शोध्य व देय, दो महीने के किराए की राशि बकाया थी। इस न्यायालय ने **बॉम्बे डाइंग** (उपरोक्त) का अनुसरण करते हुए कहाः

> "6. उक्त अधिनियम, 1982 की धारा 11 किरायेदारों को बेदखल करने से संबंधित है। यह गैर-बाध्यकारी खंड से शुरू होता है। इसमें कहा गया है कि किसी अनुबंध या कानून में कुछ भी अन्यथा निहित होने के बावजूद, कोई भी किरायेदार धारा 11 (1) (ए) से (एफ) में उल्लिखित एक या अधिक आधारों पर अदालत द्वारा पारित डिक्री के निष्पादन के अलावा बेदखल होने के लिए

उत्तरदायी नहीं होगा। इस मामले में हम चूक के आधार से संबन्धित हैं जो धारा 11 (1) (डी) के तहत आता है और जिसमें कहा गया है कि जहां किरायेदार द्वारा कानूनी रूप से शोध्य और उससे देय दो महीने के किराए की राशि अनुबंध द्वारा निर्धारित समय के भीतर भुगतान न करने के कारण बकाया है या इस तरह के अनुबंध के अभाव में, अगले महीने के अंतिम दिन तक जिसके लिए किराया देय है, तो ऐसा चूक बेदखली के लिए आधार होगा। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि धारा 11(1)(डी) में उपयोग की गई अभिव्यक्ति "कानूनी रूप से देय" है और "कानूनी रूप से वसूली योग्य" नहीं है और इसलिए, धारा 11 (1) (डी) का किराए के बकाया की वसूली से कोई लेना-देना नहीं है। इसके विपरीत, धारा 11 (1) (डी) बेदखल करने के मुकदमे में किरायेदार को बेदखल करने का आधार प्रदान करती है। यह सुस्थापित है कि परिसीमा का कानून दावेदार के मुकदमे दायर होने से तीन साल से अधिक की अवधि के लिए किराए की वसूली करने के उपाय को प्रतिबंधित करता है, लेकिन यह उक्त अधिनियम, 1982 की धारा 11 (1) (डी) के अवयवों की संतुष्टि पर बेदखली की डिक्री के लिए मकान मालिक के दावे को विफल करने का आधार नहीं हो सकता है। बॉम्बे डाइंग एंड मैनुफैक्चरिंग कं. लिमिटेड बनाम बॉम्बे राज्य [ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 328] के मामले में में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब ऋण समय-बाधित हो जाता है तो राशि अदालत की प्रक्रिया के माध्यम से कानूनी रूप से वसूली योग्य नहीं होती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं होगा कि राशि कानूनी रूप से देय नहीं रह गई है। कानून किसी देनदार को भुगतान करने और न ही किसी लेनदार को वर्जित ऋण स्वीकार करने से रोकता है।

"यह स्पष्ट है कि इस निर्णय का वर्तमान मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं होगा क्योंकि धारा 11 (1) (डी) का किराए के बकाया की वसूली से कोई लेना-देना नहीं था, लेकिन किरायेदार को बेदखल करने के लिए एक आधार प्रस्तुत करता है, यह वह संदर्भ है जिसमें "किरायेदार द्वारा कानूनी रूप से शोध्य और उससे देय" शब्दों का उपयोग किया गया था। इस न्यायालय ने सही ढंग से अभिनिर्धारित किया कि किरायेदार को बेदखल करने का अधिकार प्रभावित नहीं किया जा सकता है क्योंकि परिसीमा कानून में केवल किराए के बकाया की वसूली के उपाय का संदर्भ है, और इस तरह के कानून को किरायेदार को बेदखल करने के अधिकार के रास्ते में खड़ा नहीं माना जा सकता है।

इसी तरह, **सर हरिलाल नेमचंद गोसलिया** (उपरोक्त) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "मृतक से देय और धारित ऋण की राशि, कानूनन संपदा द्वारा देय है" जो न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की तीसरी अनुसूची में अंकित है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि वसीयत का निष्पादक समयबाधित ऋणों का भुगतान करने का हकदार है और उसे ऐसे लेनदार के साथ भ्रमित नहीं किया जा सकता है जो उन ऋणों के संबंध में निष्पादक पर मुकदमा कर सकता है। लेनदार अपनी कार्रवाई में विफल हो जाएगा क्योंकि, हालांकि ऋण बना रहता है, लेकिन परिसीमा के कानून के कारण उपाय समाप्त हो गया है। चूँकि निष्पादक अदालत में जाए बिना वसीयत के तहत देय और धारित राशि का भुगतान करने के लिए कर्तव्यबद्ध है, इसलिए वह समयबाधित ऋण का भुगतान करने का हकदार है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 323 द्वारा स्पष्ट किया गया है, जिसमें समय-बाधित ऋणों के मामले में कोई अपवाद नहीं बताता है। यह इस संदर्भ में है कि न्यायालय ने "देय" और "वसूली योग्य" के बीच के अंतर को नोट किया।

21. यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि व्याख्या, पाठ को संदर्भ के साथ मिलान करने की कला है। थोड़े अलग संदर्भ में, बिजली अधिनियम की धारा 86 के तहत, इस

न्यायालय ने, **आंध्र प्रदेश पावर समन्वय समिति और अन्य. v.लैंको कोंडापल्ली पावर लिमिटेड और अन्य,** (2016) 3 एस. सी. सी. 468 मे इन मामलों के सिद्धांत को लागू करने से इनकार करते हुए कहाः

> **"30**..... विद्युत अधिनियम में किसी भी प्रावधान के अभाव में, जो किसी दावेदार को परिसीमा कानून द्वारा वर्जित धन का दावा करने का नया अधिकार देता है, या परिसीमा का वैध बचाव करने के लिए दूसरे पक्ष के अधिकार को छीन लेता है, हम यह मानने के लिए सहमत हैं कि आयोग को प्रदत्त न्यायिक शक्ति की प्रकृति के आलोक में, इसके समक्ष निर्णय के लिए आने वाले दावों पर विचार नहीं किया जा सकता है या अनुमति नहीं दी जा सकती है यदि यह परिसीमा कानून के कारण नियमित मुकदमे या मध्यस्थता जैसी किसी अन्य नियमित कार्यवाही में कानूनी रूप से वसूली योग्य नहीं पाया जाता है। हमने यह दृष्टिकोण न केवल इसलिए लिया है क्योंकि यह अधिक न्यायसंगत प्रतीत होता है, बल्कि इसलिए भी क्योंकि श्रम कानूनों और औद्योगिक विवाद अधिनियम के विपरीत, विद्युत अधिनियम में कोई विशिष्ट दर्शन या अंतर्निहित रेखांकित कारण नहीं हैं जिनके लिए विपरीत दृष्टिकोण का पालन करने की आवश्यकता है।
>
> **31**. हमने अन्याय के साथ-साथ भेदभाव की संभावना से बचने के लिए उपरोक्त दृष्टिकोण अपनाया है।हम *केरल राज्य बनाम वी. आर. कल्लियानिकुट्टी [केरल राज्य बनाम वी. आर. कल्लियानिकुट्टी,* (1999)3 एस. सी. सी. 657] मामले में फैसले के पैरा 11 का एक हिस्सा पहले ही उद्धृत कर चुके हैं,जिसमें न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 14 के आलोक में भी मामले पर विचार किया। उस मामले में अनुच्छेद 14 के क़ानून के खिलाफ आकर्षित होने की संभावना को एक विशेष व्याख्या को सही ठहराने

के लिए उजागर किया गया था जैसा कि पहले ही नोट किया गया था।यह भी पाया गया कि यह विडंबना होगी यदि कानून द्वारा अपेक्षित त्वरित वसूली के नाम पर, एक लेनदार को परिसीमा की अवधि से परे दावों की वसूली करने में सक्षम बनाया जाता है। इस संदर्भ में, यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि धारा 86 (1) (च) के तहत परिकल्पित विशेष न्यायिक भूमिका भी त्वरित समाधान के लिए प्रतीत होती है ताकि एक महत्वपूर्ण विकासात्मक कारक-बिजली और इसकी आपूर्ति, दीवानी न्यायालय द्वारा सामान्य दीवानी विवादों के निर्णय में देरी से, प्रतिकूल रूप से प्रभावित न हो। **जाहिर है, किसी भी कारण या औचित्य के** अभाव में विधायिका ने आयोग के माध्यम से ऐसे विलंबित दावों की वसूली के लिए एक लेनदार को सक्षम करने पर विचार नहीं किया, जिसने परिसीमा की अवधि आरम्भ होने दिया। इसलिए हमारा मानना है कि आयोग के समक्ष आने वाले दावे पर विचार नहीं किया जा सकता है या इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है यदि यह दीवानी अदालत के समक्ष एक साधारण मुकदमे के लिए निर्धारित परिसीमा से वर्जित है।"।

(जोर दिया गया)

यह मामला सबसे उपयुक्त है। जैसा कि वर्तमान मामले में, और जैसा कि मार्च, 2018 की दिवाला विधि समिति की रिपोर्ट में परिलक्षित होता है, विधायिका ने एक ऐसे लेनदार को सक्षम करने पर विचार नहीं किया जिसने संहिता के तंत्र के माध्यम से इस तरह के विलंबित दावों की अनुमति देने के लिए परिसीमा की अवधि आरंभ होने दी। इस संहिता को वर्ष 2017 में उस ऋण के लिए लागू नहीं किया जा सकता है, जो मान लीजिए कि 1990 में समय-बाधित था, क्योंकि इससे संहिता के बेतुके और चरम परिणाम होंगे जो एक पुराने या मृत दावे द्वारा शुरू किए गए थे, जिसके परिणामस्वरूप कॉर्पोरेट देनदार के वर्तमान निदेशक मंडल को स्थायी रूप से तुरंत हटा दिया गया था, और जो अंततः

परिसमापन और इसलिए, कॉर्पोरेट मृत्यु का कारण बन सकता है। इस मामले में, संहिता की परिभाषा धाराओं में "देय ऋण" अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से केवल उन ऋणों को संदर्भित करेगी जो कानून में "देय और भुगतानयोग्य" हैं, यानी वे ऋण जो समय-बाधित नहीं हैं। यह मामला पहले से ही **इनोवेंटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) में हमारे द्वारा अधोलिखित रुप से अभिनिर्धारित हैः

> "**28**. जब प्रक्रिया को शुरु करने वाले वित्तीय लेनदार की बात आती है, तो धारा 7 प्रासंगिक हो जाती है। धारा 7 (1) के स्पष्टीकरण के तहत, एक चूक, कॉर्पोरेट देनदार के किसी भी वित्तीय लेनदार के लिए, बकाया वित्तीय ऋण के संबंध में है-यह आवेदक वित्तीय लेनदार के लिए बकाया ऋण होने की आवश्यकता नहीं है। धारा 7 (2) के तहत, उप-धारा (1) के तहत एक आवेदन ऐसे प्रपत्र और तरीके से किया जाना है जो निर्धारित किया गया है, जो हमें दिवाला और दिवालियापन (न्यायनिर्णायक प्राधिकरण को आवेदन) नियमों 2016 की ओर ले जाता है। नियम 4 के तहत, एक वित्तीय लेनदार द्वारा फॉर्म 1 में आवश्यक दस्तावेजों और रिकॉर्ड के साथ आवेदन किया जाता है। प्रपत्र 1 एक विस्तृत प्रपत्र है जो 5 भागों में है, जिसमें भाग I में आवेदक का विवरण, भाग II में निगमित ऋणदाता का विवरण, भाग III में प्रस्तावित अंतरिम समाधान पेशेवर का विवरण, भाग IV में वित्तीय ऋण का विवरण और भाग V में चूक के दस्तावेज, रिकॉर्ड और साक्ष्य की आवश्यकता होती है। नियम 4 (3) के तहत, आवेदक को न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के यहाँ दायर आवेदन की एक प्रति निगमित ऋणदाता के पंजीकृत कार्यालय में पंजीकृत डाक या त्वरित डाक द्वारा भेजनी होती है। न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को सूचना अभिलेखों, उपयोगिता या वित्तीय लेनदार द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर ब्यतिक्रम के अस्तित्व का पता जिस त्वरितता के भीतर लगाना है,

वह महत्वपूर्ण है। यह आवेदन प्राप्त होने के 14 दिनों के भीतर किया जाना चाहिए। यह धारा 7 (5) के स्तर पर है, जहां न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को संतुष्ट होना है कि एक चूक हुई है, कि कॉर्पोरेट देनदार को यह इंगित करने का अधिकार है कि एक चूक इस अर्थ में नहीं हुई है कि "ऋण", जिसमें एक विवादित दावा भी शामिल हो सकता है, देय नहीं है। ऋण देय नहीं हो सकता है यदि यह कानून या वास्तव में देय नहीं है। जिस क्षण न्यायनिर्णायक प्राधिकारी का समाधान हो जाता है कि कोई चूक हुई है, आवेदन को स्वीकार किया जाना चाहिए जब तक कि यह अधूरा न हो, इस मामले में वह, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी से नोटिस प्राप्त होने के 7 दिनों के भीतर, दोष को सुधारने के लिए आवेदक को नोटिस दे सकता है। उप-धारा (7) के तहत, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी तब वित्तीय लेनदार और निगमित देनदार को ऐसे आवेदन को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के 7 दिनों के भीतर पारित, यथास्थिति, आदेश के बारे में सूचित करेगा।"

(जोर दिया गया)

xxx xxx xxx

"**30.** दूसरी ओर, जैसा कि हमने देखा है, एक कॉर्पोरेट देनदार के मामले में जो वित्तीय ऋण का चूक करता है, न्यायनिर्णायक प्राधिकरण को केवल सूचना उपयोगिता के रिकॉर्ड या वित्तीय लेनदार द्वारा प्रस्तुत अन्य साक्ष्य को देखना होता है ताकि वह खुद को संतुष्ट कर सके कि चूक हुई है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि ऋण विवादित है जब तक कि ऋण "बाकी" है अर्थात देय है जब तक कि किसी कानून द्वारा बाधित नहीं किया जाता है या अभी तक इस अर्थ में देय नहीं है कि यह भविष्य की किसी तारीख को देय होगा। केवल जब न्यायनिर्णायक प्राधिकारी की संतुष्टि के साथ यह साबित हो जाता है तब

न्यायनिर्णायक प्राधिकारी किसी आवेदन को अस्वीकार कर सकता है और अन्यथा नहीं।"

(जोर दिया गया)

22.हम **वी. आर. कल्लियानिकुट्टी** (उपरोक्त) के फैसले मे पहले ही देख चुके हैं कि "देय" अभिव्यक्ति उस संदर्भ पर निर्भर करेगी जिसमें वह शब्द दिखाई देता है। संहिता की धारा 3 (11) में "ऋण" की परिभाषा को पढ़ने से यह स्पष्ट होगा कि "ऋण" का अर्थ किसी भी व्यक्ति से "देय" दावे के संबंध में दायित्व या बाध्यता है, और इसमें वित्तीय ऋण और एक परिचालन ऋण शामिल है। "वित्तीय ऋण" को धारा 5 (8) में निम्नानुसार परिभाषित किया गया हैः

"**5. परिभाषाएँ** - इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,-

xxx xxx xxx

(8) "वित्तीय ऋण" से ब्याज, यदि कोई हो, के साथ एक ऋण अभिप्रेत है जो धन के समय मूल्य के लिए प्रतिफल के विरुद्ध वितरित किया गया है और इसके अन्तर्गत हैं -

(क) ब्याज के संदाय के बदले उधार ली गई राशि;

(ख) किसी भी स्वीकृति प्रत्यय सुविधा के अधीन स्वीकृति द्वारा जुटाई गई कोई राशि या उसको अक्रियान्वित समतुल्य;

(ग) किसी भी नोट क्रय सुविधा के अनुसरण मे जुटाई गई कोई रकम या बंधपत्र, नोट, डिबेंचर, ऋण स्टॉक या किसी वैसी ही लिखत का निर्गमन;

(घ) किसी पट्टे या अवक्रय अनुबंध के संबंध में किसी दायित्व की राशि जो भारतीय लेखा मानक या ऐसे अन्य लेखा मानकों के, जो विहित किये जाएं, अधीन किसी वित्त या पूंजी पट्टे के रूप में समझी गई है।

(ङ) गैर-अवलंब आधार पर विक्रीत किन्हीं प्राप्यों से भिन्न विक्रीत या मितिकाटा प्राप्य;

(च) किसी अन्य संब्यवहार के अधीन जुटाई गई कोई भी राशि, जिसके या क्रय करार भी है।

स्पष्टीकरण - इस उपखंड के प्रयोजनों के लिए -

(i) किसी अचल संपत्ति परियोजना के तहत किसी आबंटित व्यक्ति से जुटाई गई किसी भी राशि को उधार लेने के वाणिज्यिक प्रभाव वाली राशि माना जाएगा; और

(ii) "आबंटित" और "अचल संपत्ति परियोजना" अभिव्यक्तियों का अर्थ, अचल संपत्ति (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 (2016 का 16) की धारा 2 के खंड (डी) और (जेडएन) में, क्रमशः दिया गया है।

(छ) किसी भी दर या मूल्य में उतार-चढ़ाव के विरुद्ध या उससे लाभ के संरक्षण के संबंध में किया गया कोई व्युत्पन्न संब्यवहार और किसी भी व्युत्पन्न संब्यवहार के मूल्य की संगणना करने के लिए, केवल ऐसे संब्यवहार के बाजार मूल्य को हिसाब में लिया जाएगा;

(ज) किसी प्रत्याभूति, क्षतिपूर्ति, बंधपत्र, प्रत्यय का दस्तावेजी पत्र या किसी बैंक या वित्तीय संस्थान द्वारा जारी किसी अन्य लिखत के संबंध में कोई प्रति-क्षतिपूर्ति बाध्यता;

(झ) इस खंड के उपखंड (क) से (ज) में निर्दिष्ट किसी मद के लिए किसी प्रत्याभूति या क्षतिपूर्ति के संबंध में किसी भी दायित्व की राशि;

प्रचालन ऋण को धारा 5 (21) में निम्नानुसार परिभाषित किया गया हैः

"**5. परिभाषाएँ**- इस भाग में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो, -

xxx xxx xxx

(21) "प्रचालन ऋण" से माल या सेवाओं के उपबंध के संबंध में कोई दावा जिसके अन्तर्गत नियोजन भी है या तत्समय प्रवृत्त किसी कानून के अधीन उत्पन्न केंद्र सरकार, किसी राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी को संदेय किसी शोध्य के प्रतिसंदाय के संबंध मे कोई ऋण अभिप्रेत है

धारा 3 (12) में "ब्यतिक्रम" की परिभाषा में "देय और संदेय" अभिव्यक्ति का उपयोग किया गया है जिसके बाद "और ऋणी या कॉर्पोरेट ऋणी द्वारा भुगतान नहीं किया जाता है" प्रयुक्त है। इसलिए, धारा 3 (12) में "देय और संदेय" केवल एक ऋण के पूरे या अंश को संदर्भित करता है, जो उस तारीख को संदर्भित करता है जिस पर यह "देय और संदेय" हो जाता है, वास्तव में कॉर्पोरेट ऋणी द्वारा भुगतान नहीं किया जाता है। इस प्रावधान का संदर्भ इसलिए कॉर्पोरेट ऋणी द्वारा वास्तविक गैर-भुगतान है जब कोई ऋण देय और संदेय हो जाता है।

23. धारा 7 एक वित्तीय लेनदार पर लागू होती है जो कार्पोरेट ऋणी के खिलाफ कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया शुरू करने के लिए आवेदन दायर कर सकता है, जब एक "ब्यतिक्रम" हुई हो। उसी अभिव्यक्ति का उपयोग तब किया जाता है जब एक प्रचालन लेनदार की बात आती है, जो धारा 8 के तहत "चूक" की घटना पर, यथाविहित, एक मांग नोटिस दे सकता है। "डिफ़ॉल्ट" अभिव्यक्ति पर जो बात काफी प्रकाश डालती है वह धारा 8 (2) (ए) है जो इस प्रकार हैः

"8. प्रचालन लेनदार द्वारा दिवाला समाधान-

xxx xxx xxx

(2) निगमित ऋणी, उप-धारा (1) में उल्लिखित मांग सूचना या बीजक की प्रति की प्राप्ति के दस दिनों के भीतर निमिनलिखित को प्रचालन लेनदार के ध्यान में लाएगा-

(ए) किसी विवाद का अस्तित्व, यदि कोई हो, और ऐसे विवाद के संबंध में ऐसी सूचना या ऐसे चालान की प्राप्ति से पहले दायर किए गए किसी मुकदमे या मध्यस्थता कार्यवाही के लंबित होने का रिकॉर्ड;

धारा 8 (2) (ए) के अध्ययन से यह देखा जाएगा कि निगमित देनदार, मांग सूचना की प्राप्ति के 10 दिनों की अवधि के भीतर, प्रचालन लेनदार के ध्यान में एक "विवाद" के अस्तित्व को लाएगा। हमने देखा है कि धारा 5 (6) में परिभाषित "विवाद" में कुछ मामलों से संबंधित मुकदमा या मध्यस्थता कार्यवाही शामिल है। फिर से, धारा 8 (2) (ए) के तहत, कॉर्पोरेट देनदार, वैकल्पिक रूप से, मांग सूचना की प्राप्ति से पहले दायर किए गए मुकदमे या मध्यस्थता कार्यवाही के लंबित होने का खुलासा कर सकता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि कम से कम एक प्रचालन लेनदार के मामले में, "ब्यतिक्रम" उन राशियों का भुगतान न करना होना चाहिए जो देय हो गई हैं और कानून में संदेय हैं। "विवाद" या किसी वाद या मध्यस्थता कार्यवाही की लंबितता अनिवार्य रूप से परिसीमा अधिनियम लाएगी, क्योंकि यदि कोई वाद या मध्यस्थता कार्यवाही समय-बाधित है, तो इसे खारिज किया जा सकता है। यह फिर से इस तथ्य का एक महत्वपूर्ण संकेत है कि जब संहिता की धारा 3 (11) और 3 (12) में "देय और संदेय" अभिव्यक्ति आती है, तो वे एक "चूक" का उल्लेख करते हैं जो कानून में देय ऋण का भुगतान नहीं है, यानी कि ऐसा ऋण परिसीमा कानून द्वारा वर्जित नहीं है।यह सुस्थापित है कि जहां एक ही शब्द एक समान संदर्भ में आता है, तो कानून के प्रारूपक का इरादा है कि पूरे कानून मे शब्द का अर्थ एक ही है। **(** देखें **भोगीलाल चुनीलाल पांड्या बनाम बॉम्बे राज्य** 1959 पूरक(1) एस.सी.आर. 310 पृष्ठ 313-314**)** । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संहिता की धारा 7 और 8 में "चूक" शब्द का एक ही अर्थ है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि एक निगमित देनदार के खिलाफ निगमित दिवालिया समाधान प्रक्रिया केवल एक वित्तीय या प्रचालन लेनदार द्वारा उस ऋण के विषय मे शुरू की जा सकती है जो काल बाधित न हुआ हो।

24. श्री ढोलकिया ने **फ्रांस बी. मार्टिन्स बनाम माफल्डा मारिया टेरेसा रोड्रिग्स**, (1999) 6 एस. सी. सी. 627, पर मजबूत निर्भरता रखी, जिसके द्वारा धारा 24ए को उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में 1993 के संशोधन द्वारा जोड़ा गया था, जिससे परिसीमा अधिनियम के प्रावधान उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम पर लागू किया गया। इस अभिवाक् को खारिज करते हुए, कि धारा 24ए, 1986 से 1993 तक की अवधि को आच्छादित करेगा, इस न्यायालय ने कहा कि विधायिका ने अपने विवेक से अधिनियम के तहत कार्यवाही के लिए परिसीमा की अवधि निर्धारित नहीं करना उचित समझा क्योंकि उस अधिनियम का उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितों की बेहतर सुरक्षा के लिए था। इसलिए, न्यायालय ने कहा कि अधिनियम में धारा 24ए को जोड़ने से पता चलता है कि शुरू में, विधायिका अधिनियम के तहत शिकायत दर्ज करने के लिए किसी भी परिसीमा की अवधि निर्धारित करने का इरादा नहीं रखती थी क्योंकि यह उसमें निहित लाभकारी सामाजिक कानून को बाधित करेगा। यह मामला फिर से पूरी तरह से अलग है कि अदालत ने पाया कि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम एक लाभकारी सामाजिक कानून है, जिसका उद्देश्य, जब इसे पहली बार लागू किया गया था, परिसीमा अधिनियम को लागू करना नहीं था । इसके विपरीत, वर्तमान मामले में, हम पाते हैं कि संहिता की शुरुआत से ही कंपनी अधिनियम की धारा 433 को लागू करने से संहिता का उद्देश्य वर्धित हो गया। इसके अलावा, मार्च, 2018 की दिवाला विधि समिति की रिपोर्ट यह स्पष्ट करती है कि संहिता का उद्देश्य शुरू से ही मृत या पुराने दावों को पुनर्जीवित करने की अनुमति देना नहीं था। मामले के इस दृष्टिकोण से, हमें डर है कि इस फैसले का भी कोई असर नहीं होगा।

25. श्री ढोलकिया द्वारा सौंपा गया चार्ट, जिसमें वे यह प्रदर्शित करना चाहते थे कि विभिन्न अधिनियमों के तहत विभिन्न न्यायाधिकरण या तो परिसीमा अधिनियम को लागू करते हैं या लागू नहीं करते हैं, हमें फिर से कहीं नहीं ले जाता है। चार्ट में उल्लिखित प्रत्येक अधिनियम में विधायिका के इरादे के आधार पर, या तो विधायिका ने परिसीमा

अधिनियम को लागू करना उचित समझा, या उसने ऐसा नहीं किया, जो प्रश्नगत अधिनियम की विषय वस्तु पर निर्भर करता है। हमने अभिनिर्धारित किया है कि कम से कम जहां तक संहिता का संबंध है, विधायिका का इरादा, शुरुआत से ही, संहिता की धारा 7 और 9 के तहत दायर आवेदनों और उनसे अपीलों पर निर्णय लेते समय एन. सी. एल. टी. और एन. सी. एल. ए. टी. पर परिसीमा अधिनियम लागू करना था। कंपनी अधिनियम की धारा 433, जो न्यायाधिकरण और अपीलीय न्यायाधिकरण पर लागू होती है, स्पष्ट रूप से अपीलीय न्यायाधिकरण, एन. सी. एल. ए. टी. पर भी परिसीमा अधिनियम लागू करती है। इसके अलावा, यह तर्क कि एन. सी. एल. ए. टी. एक अपीलीय न्यायाधिकरण है जो तीन कानूनों के लिए सामान्य है, जिनमें से एक के तहत, अर्थात् प्रतिस्पर्धा अधिनियम, परिसीमा की कोई अवधि निर्धारित नहीं करता, किसी भी विसंगत स्थिति का कारण नहीं बनेगी। जब अपीलीय न्यायाधिकरण, अर्थात एन. सी. एल. ए. टी. प्रतिस्पर्धा अधिनियम के तहत एक अपील का फैसला करता है, क्योंकि एक अपील, प्रतियोगिता आयोग के समक्ष दायर आवेदन की निरंतरता है (देखें-**लक्ष्मेश्वर प्रसाद शुकुल और अन्य बनाम केश्वर लाल चौधरी और अन्य**, ए. आई. आर. 1941 एफ. सी. 5), एन. सी. एल. ए. टी. इस आधार पर अपील पर निर्णय लेगा कि प्रतिस्पर्धा आयोग के समक्ष किए गए आवेदन पर परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होता है। दूसरी ओर, जहां तक संहिता की धारा 7 या 9 के तहत दायर आवेदनो, या कंपनी अधिनियम के तहत दायर याचिकाओं या आवेदनों का सम्बंध है, एनसीएलएटी ऐसी याचिकाओं/आवेदनों पर इस आधार पर निर्णय लेगा कि ऐसी याचिकाओं/आवेदनों पर परिसीमा अधिनियम लागू होगा। केवल इसलिए कि विभिन्न कानूनों के तहत अपीलें एक अपीलीय न्यायाधिकरण को भेजी जाती हैं, कानून में स्थिति पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। निस्संदेह, यदि विचाराधीन तीन अधिनियमों के तहत तीन अलग-अलग अपीलीय न्यायाधिकरणों का गठन किया गया होता, तो इस तर्क का कोई आधार नहीं होता। केवल इसलिए कि सुविधा के दृष्टिकोण से, एक अपीलीय

अधिकरण के समक्ष अपील दायर की जाती है, इसका मतलब यह नहीं होगा कि कोई विसंगत स्थिति उत्पन्न होगी क्योंकि प्रत्येक अपील का निर्णय विचाराधीन विशेष अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा। इसलिए इस तर्क को भी खारिज किया जाना चाहिए।

26. श्री ढोलकिया ने तर्क दिया कि संहिता अपने आप में पूर्ण होने के कारण, परिसीमा अधिनियम जैसे घुसपैठिये को संहिता की धारा 238 को लागू करके भी समाप्त किया जाना चाहिए, जिसमें यह प्रावधान है कि " तत्समय प्रवृत्त किसी भी अन्य कानून में कुछ भी असंगत होने के बावजूद", संहिता के प्रावधान ऐसे कानूनों पर अध्यारोही होंगे। वास्तव में, संहिता की धारा 60 (6) विशेष रूप से निम्नलिखित बताती हैः

"60. **निगमित व्यक्तियों के लिये न्यायनिर्णायक प्राधिकारी**

xxx xxx xxx

(6) परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, किसी ऐसे निगमित ऋणी द्वारा या उसके विरुद्ध, जिसके लिए इस भाग के तहत अधिस्थगन का आदेश दिया गया है, किसी वाद या आवेदन के लिए विनिर्दिष्ट परिसीमा की कालावधि की गणना करने में, , ऐसी अवधि को अपवर्जित किया जाएगा जिसके दौरान ऐसा अधिस्थगन हुआ था।"

यह प्रावधान पूरी तरह से अनावश्यक होता यदि परिसीमा अधिनियम को या तो संहिता के अपने आप में पूर्ण होने के कारण या संहिता की धारा 238 के आधार पर, अन्यथा अपवर्जित रखा जाता। कंपनी अधिनियम की धारा 433 के साथ-साथ संहिता की धारा 238 ए दोनों ही परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को "जहां तक हो सके" लागू करते हैं। जाहिर है, इसलिए, जहां संहिता में परिसीमा की कालावधि निर्धारित की गई है, ये कालावधि, परिसीमा अधिनियम में इसके विपरीत कुछ भी होने के बावजूद, लागू होंगी।

इससे ऐसा निष्कर्ष नहीं होता है कि बच्चे को नहाने के पानी के साथ बाहर फेंक दिया जाना चाहिए। इसलिए इस तर्क को भी खारिज किया जाना चाहिए।

27. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चूंकि परिसीमा अधिनियम, संहिता की शुरुआत से ही संहिता की धारा 7 और 9 के तहत दायर आवेदनों पर लागू होता है, इसलिए परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137 आकर्षित होता है। "मुकदमा करने का अधिकार", इसलिए, एक ब्यतिक्रम होने पर अर्जित होता है। यदि आवेदन दाखिल करने की तारीख से तीन साल पहले ब्यतिक्रम हुआ है, तो आवेदन को परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 के तहत वर्जित किया जाएगा, सिवाय उन मामलों के जहां मामले के तथ्यों में, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 को इस तरह के आवेदन दाखिल करने में देरी को माफ करने के लिए लागू किया जा सकता है।

28. हमारे इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि परिसीमा अधिनियम वास्तव में संहिता की शुरुआत से ही लागू किया गया है, हमारे लिए लचेस के सिद्धांत पर आधारित तर्कों में जाना अनावश्यक है। इसलिए इस फैसले के आलोक में, अपीलों पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए अपीलों को एन. सी. एल. ए. टी. को वापस भेजा जाता है।

ओम प्रकाश